विवेक शिखा

—७ दिसम्बर—१९८८ अंक—१

बेलुड़ मठ-मंदिर अर्द्ध शताब्दी अंक

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० गौर पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निर्शीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति अमरावती ,,
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द ढनढनिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे—दमोह (म० प्र०)
५१. श्री बी० सी० नागोरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा—समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चिनुभाई भलाभाई पटेल—खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला—कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री सुरेश चन्द्र बाजपेयी—जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय—पुलिन गंज, इलाहा[illegible]
५९. श्री बसन्त लाल जैन कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस—बुधपुरा बाजार (मसर[illegible]
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ—हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका—डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल,
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम—इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मिश्रा—इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्तिनाथानन्द—रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिक।

वर्ष— ७ दिसम्बर—१९८८ अंक—१२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक
श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय।
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएं एव सहयोग - राशि सपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

साधक का बल क्या है ? साधक ईश्वर की सन्तान है, बच्चों की तरह रोना ही उसका बल है। माँ जिस प्रकार बच्चे को रोते, मचलते देखकर उसका हठ पूरा करती है, उसी प्रकार भगवान् भी साधक को व्याकुल होकर रोते देख उसकी प्रार्थना पूरी करते हैं।

(२)

रेल का इंजन खुद भी गन्तव्य को जाता है और अपने साथ माल से लदे कितने ही डब्बों को खींच ले जाता है। उसी प्रकार, अवतार पाप के बोझ से लदे संसारासक्त जीवों को ईश्वर के निकट खींच ले जाते हैं।

(३)

तुम्हारे लिए कर्म का त्याग करना सम्भव नहीं। तुम्हारी इच्छा हो या न हो, तुम्हारा स्वभाव तुमसे कर्म करवाएगा। इसलिए अनासक्त होकर कर्म करो। अनासक्त होकर कर्म करने से ईश्वरलाभ होता है। अनासक्त होकर कर्म करना अर्थात् कर्मफल की आकांक्षा न रखना। ईश्वरलाभ जीवन का उद्देश्य है और निष्काम कर्म उसका उपाय।

(४)

जिस घर में सदा हरिगुण-संकीर्तन होता है, उसमें कलि प्रवेश नहीं कर पाता।

श्रीसारदादेवी भजन

—श्रीसारदा तनय
नागपुर

(राग—सिंधु खमाज : ताल : झपताल)

दे माँ दरस एक बार।
सुन ले जननि अब तनय की पुकार ॥ध्रु०॥

अविवेक से अंध, भटकूँ निरानन्द
कब तक सहूँ द्वन्द्व! मैं तो गया हार ॥१॥

जीवन बना शुद्ध, हिय को कर प्रबुद्ध
अब ना रखो रुद्ध, अनुभूति का द्वार ॥२॥

हर भोग आसक्ति, दे माँ विमल भक्ति
चित में जगा शक्ति, तर जाऊँ भव-पार ॥३॥

दे माँ दरस एक बार।
सुन ले जननि अब तनय की पुकार ॥४॥

बेलुड़ मठ एक बार

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

कई वर्ष पहले की एक बात याद आती है। मेरे एक पुराने मित्र बेलुड़ मठ का दर्शन कर लौटे थे। बड़े आह्लादित और आनन्द विभोर थे। मिलते ही उन्होंने कहा था, "मैं बेलुड़ मठ का दर्शन कर लौटा हूँ। कैसा लगा और कैसे अनुभव हुए, यह न पूछिए। मैंने आते ही अपनी पत्नी से कहा, 'यदि किसी दिन, किसी कारणवश मैं यहाँ से भाग जाऊँ तो तुम मुझे कहाँ खोजने जाओगी !' पत्नी ने कहा, 'मैं क्या बताऊँ ?' तब मैंने कहा, 'देखो, ऐसी स्थिति में तुम सीधे बेलुड़ मठ पहुँच जाना। मैं वहीं मिलूँगा। मेरे अशान्त मन के लिए जगत में वही एक मात्र विश्राम स्थल होगा।' इसी से आप बेलुड़ मठ के सम्बन्ध में मेरी धारणा का अनुमान लगा सकते हैं।

अभी कुछ दिन पहले श्रीराजीव गांधी बेलुड़ मठ गये थे। उन्होंने रामकृष्ण मिशन और मठ के महाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज से कहा—'महाराज, यहाँ से तो जाने का मन ही नहीं करता है।"

यह है बेलुड़ मठ। जो भी एक बार बेलुड़ मठ गया, उसके मन-प्राणों में बेलुड़ मठ छा गया। उसे शान्ति मिली, विश्राम मिला, धन्यता मिली, आनन्द मिला।

ऐसा क्या है बेलुड़ मठ में कि वह हर आगत प्राणी के मन को बाँध लेता है ? चाहे यात्री भारत का हो या अमेरिका का, रूस का हो या चीन और जापान का, आस्तिक हो या नास्तिक, हिन्दू हो या बौद्ध, मुसलमान हो या सिख, पारसी हो या ईसाई—बेलुड़ मठ आते ही वह विनत-प्रणत, शान्त-प्रशान्त हो जाता है।

सन् १८९७ ई०। कलकत्ते के बागबाजार में स्थित स्व० बलराम बसु का भवन। विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्दजी ने एक एक दिन यहाँ श्रीरामकृष्ण के भक्तों को बुलाकर उनसे अपने प्राणों में वर्षों से छिपे भावों को उड़ेलते हुए कहा—"अनेक देशों में भ्रमण करने पर मैंने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि बिना संघ के कोई भी बड़ा कार्य सिद्ध नहीं होता।.........यह संघ उन श्रीरामकृष्ण के नाम पर स्थापित होगा जिनके नाम पर भरोसा कर हम संन्यासी हुए और आप सब महानुभाव जिनको अपना जीवन-आदर्श मान संसार-आश्रमरूप कार्यक्षेत्र में विराजित हैं और जिनके देहावसान से बीस ही वर्ष में प्राच्य तथा पाश्चात्य जगत् में उनके पवित्र नाम और अद्भुत जीवनी का प्रसार ऐसा आश्चर्यजनक हुआ है। हम सब प्रभु के सेवक हैं, आप लोग इस कार्य में सहायता दीजिए।" इस प्रस्ताव पर लोग सम्मत हुए। भावी कार्यप्रणाली की रूपरेखा बनी और संघ का नाम 'रामकृष्ण संघ" अथवा "रामकृष्ण मिशन" रखा गया।

आलम बाजार में मठ की स्थापना हुई। १८९८ ई० में मठ निलाम्बर मुखर्जी के मकान में स्थानान्तरित हुआ। उसी की बगल में बेलुड़ मठ का निर्माण शुरू हुआ। ९ दिसम्बर, १८९८ ई० को स्वामीजी ने बेलुड़ मठ का उद्घाटन किया। यह पुराना मठ था। और आज जो विशाल दिव्य मठ दिखाई पड़ता है उसका शिलान्यास १९२९ ई० में स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने किया जो १९३४ ई० में तैयार हो गया और १४ जनवरी १९३८ ई० को यह पूर्ण रूपेण प्रतिष्ठित होकर लोकार्पित हुआ। इस प्रकार बेलुड़ मठ के वर्तमान मंदिर की स्थापना के ५० वर्ष पूरे हुए। यह वर्ष उसका अर्धशताब्दी वर्ष है।

आज इस बेलुड़ मठ में संसार भर के ताप-तप्त प्राणी खिंचे चले आते हैं—शान्ति के सन्धान में आनन्द की खोज में और आकर प्राप्त करते हैं एक दैवी तृप्ति, एक आत्मिक आनन्द, एक आन्तरिक विश्रान्ति। ऐसा क्यों होता है?

बेलुड़ मठ की स्थापत्य कला विश्वधर्म समन्वय का विलक्षण निदर्शन करती है। इसी से यह मठ चुम्बक की भाँति हर देश के, हर धर्म के प्राणी को अपनी ओर अनायास खींच कर उसे आत्म विस्मृत, आत्म विभोर कर देता है। दर्शक की देह चेतना और काल चेतना सहज ही समाप्त हो जाती है। वह मठ को देखते ही या मठ में प्रवेश करते ही आत्मस्थ होने लगता है। एक समाधि की-सी मनोदशा में वह आनन्द धाम में प्रतिष्ठत होने लगता है। उसकी भौतिक लालसाएं और भोगैषणाएं सूखे पत्ते की भाँति झड़ने लगती हैं और फूटने लगती हैं उसके भीतर दिव्यता और चिन्मयता की नयी कोपलें। नहाने लगता है वह अपने मूल स्वरूप के अमृत सरोवर में। पीने लगता है वह निर्बन्धता का, मुक्ति-बोध का मधुकलश। बेलुड़ मठ सहज ही उसके और परमात्मा के बीच एक अमृत-सेतु-सा भास्वर हो उठता है। नत मस्तक हो जाता है वह बेलुड़ मठ के प्रथम सोपान पर पांव रखते ही।

बेलुड़ मठ श्रीरामकृष्ण का प्रत्यक्ष बैठकखाना है। यहाँ श्रीरामकृष्ण स्वयं निवास करते हैं। न केवल यहाँ आत्माराम की डिबिया है बल्कि श्रीरामकृष्ण यहाँ प्रत्यक्षतः विराजते हैं। अगर आप मठ में प्रतिष्ठित उनकी प्रतिमा की ओर ध्यान दें तो कभी वे आपको गंभर मुद्रा में दिखेंगे, मानो वे समाधिस्थ हों; कभी वे मुस्कुराते हुए लगेंगे, मानों वे हमारी अज्ञता, मूर्खता या स्वेच्छाचार पर विहँस रहे हों, और कभी वे आह्लाद की स्थिति में प्रसन्नवदन दिखेंगे, मानो वे आनन्द की हाट पसार रहे हों। फिर इस बेलुड़ मठ को देख कौन नहीं झूम उठेगा?

स्वामीजी के निर्देशानुसार जब स्वामी विज्ञानानन्द महाराज (श्रीरामकृष्ण के लीला पार्षद्) ने बेलुड़ मठ का नक्शा बनाया तो उसे देखकर स्वामीजी ने कहा था, 'यह मन्दिर तो निश्चय ही बन जायगा पर संभवतः मैं इसे देखने को जीवित नहीं रहूँगा।' फिर तुरंत ही उन्हों ने कहा, 'मैं इसे देखूँगा, मैं इसे देखूँगा, लेकिन ऊपर से।' कहते हैं कि उन्होंने मन्दिर के ऊपर का वह भाग भी बताया था जहाँ से वे मन्दिर को देखेंगे। और १४ जनवरी १९३८ को जब मन्दिर में ठाकुर की प्रतिष्ठा हो रही थी तो अचानक स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज मन्दिर से बाहर आकर ऊपर की ओर देखने लगे। बाद में उन्होंने भक्तों से बताया कि उन्होंने मन्दिर के ऊपर श्रीरामकृष्ण, स्वामीजी, स्वामी ब्रह्मानन्द आदि सब को प्रसन्न मुद्रा में देखा था।

मन्दिर एक से एक रोज ही बनते-ढहते हैं। अगर एक बेलुड़ मठ का मन्दिर और बन ही गया तो इसमें कौन सा बड़ी बात हो गयी—यह प्रश्न उठता है। क्या यह श्रीरामकृष्ण के एक प्रखर शिष्य की अतिशय गुरुभक्ति का ही प्रमाण मात्र नहीं है? नहीं। यह बात नहीं है। गुरु-भक्ति अपनी जगह पर है, किन्तु बेलुड़ मठ के निर्माण के मूल में एक क्रान्तदर्शी ऋषि स्वामी विवेकानन्द की उदात्त कल्पना कार्य रही थी। उन्होंने कहा था—"यह मठ साधन भजन एवं ज्ञानचर्चा का प्रधान केन्द्र होगा—यही मेरी इच्छा है। यहाँ से जिस शक्ति की उत्पत्ति होगी वह पृथ्वी भर में फैल जायगी और वह मनुष्य के जीवन की गति को परिवर्तित कर देगी। ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म के समन्वय स्वरूप मानव-हितकर उच्च आदर्श यहाँ से प्रसृत होंगे। इस मठ के पुरुषों के इशारे पर एक समय दिग-दिगन्त में प्राण का संचार होगा। समय पर

यथार्थ धर्म के सब प्रेमी यहाँ आकर एकत्रित होंगे—मन में इसी प्रकार की कितनी ही कल्पनाएं उठ रही हैं।" कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वामीजी की वे कल्पनाएं आज वास्तविक ओर मूर्त रूप में साकार हो उठी हैं।

बेलुड़ मठ में श्रीरामकृष्ण की प्रस्तर प्रतिमा अवश्य है और उनकी पूजा-अर्चना भी अन्य मन्दिरों में प्रतिष्ठित प्रतिमाओं की भाँति ही न्यूनाधिक रूप में होती है, फिर भी बेलुड़ मठ अन्य मन्दिरों से भिन्न है। यह कोई साम्प्रदायिक मन्दिर नहीं है। श्रीरामकृष्ण शरीर नहीं हैं। यदि वे केवल शरीरगत होते तो ईंट पत्थरों से बने इस मन्दिर का कोई प्रयोजन नहीं होता, कोई औचित्य नहीं होता। श्रीरामकृष्ण थे एक भाव-विग्रह, एक आदर्शों के अवतार, एक प्रत्यक्षानुभूतियों की प्रज्वलित दीपशिखा। और इसीलिए बेलुड़ मठ सीधा सामान्य मन्दिर नहीं, एक भाव मन्दिर है, एक आदर्श मन्दिर है। स्वयं स्वामीजी का बेलुड़ मठ के सन्दर्भ में कथन है—"हमारे श्रीरामकृष्ण सर्व भावों की साक्षात् समन्वय-मूर्ति हैं। उस समन्वय के भाव को यहाँ पर जगाकर रखने से श्रीरामकृष्ण संसार में प्रतिष्ठित रहेंगे। सर्वमत, सर्व पन्थ, ब्राह्मण-चाण्डाल सभी लोग जिससे यहाँ पर आकर अपने-अपने आदर्श को देख सकें, यही करना होगा। उस दिन जब मठभूमि पर श्रीरामकृष्ण की प्राणप्रतिष्ठा की, उस समय ऐसा लगा मानो यहाँ से उनके भावों का विकास होकर चराचर विश्व भर में छा गया है.······असल में प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन में शुद्धाद्वैत की सत्यता को प्रमाणित करना होगा। श्रीशंकर इस अद्वैतवाद को जंगलों और पहाड़ों में रख गये हैं, मैं अब उसे वहाँ से लाकर संसार और समाज में प्रचारित करने के लिए आया हूँ।" बेलुड़ मठ वस्तुतः उसी सर्वधर्म समन्वय और अद्वैतवाद का भाव मन्दिर है।

बेलुड़मठ रमणीय है। क्षण-क्षण इसमें नवीनता की किरणें फूटती हैं। मैंने बेलुड़मठ को विभिन्न मुद्राओं, विभिन्न भंगिमाओं में, विभिन्न मूडों (Moods) में देखा है और देखकर विस्मित हुआ हूँ. प्रत्यूष की वेला में यह मठ-परिसर के मानसर में उतरे हुए किसी राजहंस की भाँति लगता है। ऊषा की लालिमा में नहाकर यही चेतना के खिले हुए उर्ध्वोन्मुखी अरुणाभ कमल-सा मोहक हो उठता है। दिन की दोपहरी तक यह मठ अनन्त ऊर्जा के स्फुलिंग बिखेरता दीखता है तो शाम के धुंधलके में यह भूमानन्द के मधुमय संगीत टेरता लगता है। और रात ज्यों-ज्यों गहराती है बेलुड़ मठ किसी समाधिस्थ परम पुरुष की दिव्य आभा में सराबोर हो परम शान्ति, सुख और आनन्द का कैलासकूट हो जाता है। जिसे आँख है वह बेलुड़ मठ के इस पल-पल परिवर्तित दृश्य को देखता है, जिसे कान है, वह इसके अनाहत संगीत को सुनता है। जिसने एक बार भी बेलुड़ मठ को देखा है वही इसके विद्युत् स्पर्श से प्रेम-पुलकित हो उठा है।

बेलुड़ मठ एक महातीर्थ है। और तीर्थों में बार-बार जाकर भी जो रस नहीं मिलता, वह बेलुड़ मठ में एक बार जाने से ही प्राप्त हो जाता है, जो एक बार भी बेलुड़ मठ जायगा। वह धन्यता प्राप्त करेगा, परितृप्ति प्राप्त करेगा, उच्चता और दिव्यता के राजभवन में प्रवेश करने की कुंजी प्राप्त करेगा। संभव है, उसका स्वयं का जीवन ही एक बेलुड़ मठ हो जाय—श्रीरामकृष्ण के भावों का आलोक धाम हो जाय।

भगवान् श्रीरामकृष्ण से मेरी आंतरिक प्रार्थना है कि वे हम में बेलुड़ मठ के भावादर्शों को भरकर अपना जीवन गठन करने की प्रेरणा प्रदान करें। जय श्रीरामकृष्ण! जय माँ! जय स्वामी जी! ◻

बेलुड़ मठ में ठाकुर प्रतिष्ठा

—शरत् चन्द्र चक्रवर्ती

(९ दिसम्बर १८९८ ई० को स्वामी विवेकानन्द ने बेलुड़ मठ में श्रीरामकृष्ण देव की प्रतिष्ठा की थी उस समय उनके प्रिय शिष्य शरत् चन्द्र चक्रवर्ती भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने प्रतिष्ठा-दिवस का वर्णन 'स्वामी-शिष्य संवाद' नामक अपनी बंगला पुस्तक में किया है, जिसे बाद में 'विवेकानन्द सहित्य' में अन्तर्विष्ट कर लिया गया। उसे ही विवेकानन्द साहित्य, षष्ठ खंड (१९७२) पृ० ७८-८१ से यहाँ साभार उद्धृत किया गया है। सं०)

आज स्वामीजी नये मठ की भूमि पर यज्ञ करके श्री रामकृष्ण के चित्र की प्रतिष्ठा करेंगे। ठाकुर-प्रतिष्ठा दर्शन करने की इच्छा से शिष्य पिछली रात से ही मठ में उपस्थित है।

प्रातः काल गंगा स्नान कर स्वामीजी ने पूजाघर में प्रवेश किया। फिर पूजन के आसन पर बैठ कर पुष्पपात्र में जो कुछ फूल और बिल्वपत्र थे, दोनों हाथों में सब एक साथ उठा लिये और श्रीरामकृष्णदेव की पादुकाओं पर अर्पित कर ध्यानस्थ हो गये—कैसा अपूर्व दर्शन था! उनकी धर्मप्रभा-विभासित स्निग्धोज्ज्वल-कान्ति से पूजागृह मानो एक अद्भुत ज्योति से पूर्ण हो गया। स्वामी प्रेमानन्द तथा अन्य स्वामी गण पूजागृह के द्वार पर खड़े रहे।

ध्यान तथा पूजा समाप्त होने के बाद नये मठ की भूमि में जाने का आयोजन होने लगा। ताँबे की जिस मंजूषा में श्रीरामकृष्णदेव की भस्मास्थि रक्षित थी, उसको स्वामीजी स्वयं अपने कन्धे पर रखकर आगे चलने लगे। शिष्य अन्य संन्यासियों के साथ पीछे चला। शंख-घण्टों की ध्वनि चारों ओर गूँज उठी। भागीरथी गंगा अपनी लहरों से मानो हाव-भाव के साथ नृत्य करने लगीं। मार्ग से जाते समय स्वामीजी ने शिष्य से कहा, "श्री गुरुदेव ने मुझसे कहा था कि तू मुझे कन्धे पर चढ़ाकर जहाँ ले जायगा, मैं वहीं रहूँगा, चाहे वह स्थान वृक्ष के तले हो या कुटी में। इसीलिए मैं स्वयं उनको कन्धे पर उठाकर नयी मठ-भूमि पर ले जा रहा हूँ। निश्चय जान लेना कि श्री गुरुदेव 'बहुजन हिताय' यहाँ दीर्घ काल तक स्थिर रहेंगे।"

शिष्य—श्रीरामकृष्ण ने आपसे यह बात कब कही थी?

स्वामीजी—(मठ के साधुओं को दिखाकर) क्या इनसे कभी यह बात नहीं सुनी? काशीपुर के बाग में।

इसी प्रकार वार्तालाप करते हुए वे सब नयी मठ-भूमि पर पहुँचे। स्वामीजी ने कन्धे पर से मंजूषा को जमीन पर बिछे हुए आसन पर उतारा और भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। अन्य सबने भी प्रणाम किया।

इसके बाद स्वामीजी पूजा के लिए बैठ गये। पूजा के अन्त में यज्ञाग्नि प्रज्वलित करके हवन किया और संन्यासी गुरुभाइयों की सहायता से स्वयं पायस (खीर) तैयार कर श्रीरामकृष्ण को भोग चढ़ाया। ऐसा स्मरण होता है कि उस दिन स्वामीजी ने कुछ गृहस्थों को दीक्षा भी दी थी। जो कुछ भी हो, फिर पूजा सम्पन्न होने पर स्वामीजी ने समागतों को आदर से बुलाकर कहा, "आज तुमलोग तन, मन, वाक्य द्वारा श्री गुरुदेव से ऐसी प्रार्थना करो जिससे महा युगावतार श्री रामकृष्ण 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' इस पुण्यक्षेत्र में अधिष्ठित

रहें और इसे सब धर्मों का अपूर्व समन्वय केन्द्र बनाये रखें।" हाथ जोड़कर सब ने प्रार्थना की। पूजा सम्पूर्ण होने पर स्वामीजी ने शिष्य से कहा, "श्री गुरुदेव की इस मंजूषा को अपने मस्तक पर रखकर मठ (नीलाम्बर बाबू की वाटिका) को ले चल।" शिष्य को मंजूषा को स्पर्श करने में हिचकिचाते देख स्वामीजी बोले, "डरो मत, उठा लो, मेरी आज्ञा है।" तब शिष्य ने बड़े आनन्द से स्वामीजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर मंजूषा को अपने सिर पर उठा लिया। अपने गुरु की आज्ञा से उसको स्पर्श करने का अधिकार पाकर उसने अपने को कृतार्थ माना। आगे-आगे शिष्य, उसके पीछे स्वामीजी और उनके पीछे बाकी सब चलने लगे। रास्ते में स्वामीजी उससे बोले, "श्री गुरुदेव तेरे सिर पर सवार होकर तुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। आज से सावधान रहना, किसी अनित्य विषय में अपना मन न लगाना।" एक छोटा सा पुल पार करते समय स्वामी जी ने शिष्य से कहा, "देखो, यहाँ खूब सावधानी और सतर्कता से चलना।"

इस प्रकार सब लोग निर्विघ्न मठ में पहुँचकर हर्ष मनाने लगे। स्वामीजी अब शिष्य से कथा-प्रसंग में कहने लगे, "श्री गुरुदेव की इच्छा से आज उनके धर्मक्षेत्र की प्रतिष्ठा हो गयी। बारह वर्ष की चिन्ता का बोझ आज सिर से उतर गया। इस समय मेरे मन में क्या भाव उठ रहे हैं, सुनेगा? यह मठ विद्या एवं साधना का एक केन्द्र स्थान होगा। तुम्हारे समान धार्मिक गृहस्थ इस भूमि के चारों ओर अपना घर-बार बनाकर बसेंगे और बीच में त्यागी संन्यासी लोग रहेंगे। मठ के दक्षिण की ओर इंगलेंड तथा अमेरिका के भक्तों के लिए गृह बनाये जायँगे। यदि ऐसा हो जाय तो कैसा होगा?"

शिष्य—आपकी यह कल्पना बड़ी अद्भुत है।

स्वामीजी—कल्पना क्यों? समय आने पर सब होकर रहेगा। मैं तो इसकी नींव मात्र डाल रहा हूँ। बाद में न जाने क्या-क्या होगा! कुछ तो मैं कर जाऊँगा और कुछ विचार तुम लोगों को दे जाऊँगा। भविष्य में तुम उन सबको कार्य रूप में परिणत करोगे। बड़े-बड़े सिद्धान्त को सुनकर रखने से क्या होगा? प्रतिदिन उनको व्यावहारिक जीवन में कार्यान्वित करना चाहिए। शास्त्रों की लम्बी-लम्बी बातों को केवल पढ़ने से क्या होगा? पहले उन्हें समझना चाहिए, फिर अपने जीवन में परिणत करना चाहिए! समझे? इसी को कहते हैं व्यावहारिक धर्म।

बेलुड़ मठ के जाग्रत देव

—ब्रह्मचारी विवेक

एक बार स्वामी विवेकानन्द के एक गृही शिष्य शरत्चन्द्र चक्रवर्ती ने उनसे प्रश्न किया—'महाराज-शास्त्रों से तीर्थ-स्थानों की विशेष महिमा जान पड़ती है। यह कहाँ तक सत्य है?' इस प्रश्न के उत्तर के रूप में स्वामीजी ने जो बातें कहीं, वे तीर्थ की उत्पत्ति एवं महिमा के सम्बन्ध में विशेष प्रमाण स्वरूप हैं। स्वामीजी ने कहा—"समस्त ब्रह्माण्ड जब नित्यआत्मा ईश्वर का ही विराट शरीर है, तब विशेष विशेष स्थानों के माहात्म्य में आश्चर्य की क्या बात है? विशेष स्थानों पर उनका विशेष विकास हुआ है। कहीं पर वे आप ही प्रकट होते हैं, कहीं कहीं शुद्ध सत्त्व मनुष्य के व्याकुल आग्रह से। साधारण मनुष्य जिज्ञासु होकर वहाँ पहुँचने पर सहज ही फल प्राप्त करते। हैं"[1]

व्याकरण शास्त्र के अनुसार 'तृ — प्लवनतरणयो:' धातु से 'पातृतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक्' इस उणादि सूत्र द्वारा 'थक्' प्रत्यय करने पर 'तीर्थं अनेन (इससे

तर जाते हैं" इस अर्थ में 'तीर्थ' शब्द निष्पन्न होता है अथवा 'तरति पापादिकं यस्मात्' अर्थात् जिसके द्वारा मनुष्य पापादि से मुक्त हो जाय, उसे तीर्थ कहते हैं। तीर्थ तीन प्रकार के कहे गये हैं—जंगम, मानस और भौम।

ऋषि-महर्षि, संत-महात्मा, संन्यासी-ब्राह्मण आदि को जंगम अर्थात् 'चलता-फिरता' तीर्थ कहा जाता है। 'ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं निर्मलं सार्वकालिकम्' और जैसा कि संत तुलसीदास भी कहते हैं—'मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू॥' इन महात्माओं के पवित्र संग से, इनके सदवाक्य रूप निर्मल जल से अपवित्र चित्त व्यक्ति भी शुद्ध चित्त वाले हो जाते हैं।

सत्य, क्षमा, दान, इन्द्रियनिग्रह, दया, विनम्रता, तप, संतोष आदि मानस तीर्थ कहलाते हैं। श्री शंकराचार्य भी कहते हैं—'तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम्' (अपने मन की शुद्धि ही परम तीर्थ है)।

भौम तीर्थ के तीन भेद हैं—

(क) नित्य तीर्थ : काशी, कैलाश, मानसरोवर, गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी पुण्य सरिताएँ आदि नित्य तीर्थ हैं।

(ख) भगवदीय तीर्थ : जहाँ भगवान् का विशेष अवतार हुआ, जहाँ उन्होंने लीला की, जहाँ उन्होंने किसी भक्त को दर्शन दिये, वे भगवदीय तीर्थ हैं।

(ग) संत तीर्थ : जीवन्मुक्त, देहातीत, परमभागवत व भगवत्प्रेम में तन्मय संत की जन्म भूमि, साधना भूमि एवं उनकी निर्वाण भूमि संततीर्थ कहलाती हैं।

क्या इस पृथ्वी पर कोई ऐसी पवित्र भूमि है, जहाँ उपर्युक्त तीनों प्रकार के तीर्थ एक साथ वास करते हैं, अर्थात् जहाँ जंगम, मानस एवं भौम तीनों तीर्थों का समावेश हो? निश्चय ही वैसी भूमि है—पवित्र सलिला भागीरथी के तट पर स्थित, वृक्ष, लता, पुष्प-वाटिका आदि से सुशोभित, रंग-बिरंगे पक्षियों के कलरव से गुंजित, गैरिक एवं श्वेत वस्त्रधारी नारा[यण] स्वरूप, विशुद्ध चित्त साधु-ब्रह्मचारियों के अखण्ड भग[वत्] चिंतन, जप-ध्यान एवं भजन-कीर्तन से सदैव स्पं[दित], सर्वोपरि साक्षात् भगवती श्रीमाँ सारदा के पाद स्[पर्श] एवं निवास से धन्य एवं पवित्र; स्वामी विवेकान[न्द], स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी शिवानन्द प्रभृति भगवान् श्री रामकृष्णदेव के लीलापार्षदों की निवास स्थली—इ[स] युग का महानतम् एवं पवित्रतम् तीर्थ स्थान बेलुड़मठ।

'सुबह-ए-बनारस' एवं 'शाम-ए-अवध' के सम्बन्[ध] में हमने बहुत सुना है। किन्तु बेलुड़ मठ की सुबह औ[र] शाम ! दोनों की तुलना नहीं ! मठ का संपूर्ण वातावरण अत्युच्च शक्तिसंपन्न आध्यात्मिक भावतरंग से सदैव स्पंदित होता रहता है। यह वह स्थान है, जिसके सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द ने कहा था— "यहाँ से जिस शक्ति की उत्पत्ति होगी, वह पृथ्वी भर में फैल जायगी और वह मनुष्य के जीवन की गति को परिवर्तित कर देगी। ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म के समन्वय स्वरूप मानव के लिए हितकर उच्च आदर्श यहाँ से प्रसूत होंगे। इस मठ के पुरुषों के इशारे पर एक समय दिग्दिगन्त में प्राण का संचार होगा।"[१]

अखिल ब्रह्माण्ड के स्रष्टा परमात्मा रूप से सर्व-व्यापी होते हुए भी, अपनी लीला से, स्वामी विवेका-नन्द को दिये अपने वचन की रक्षा के लिए अपने भक्तों एवं शरणागतों पर कृपा करने के लिए, करुणावश सूक्ष्मशरीर धारण कर यहाँ निवास करते हैं एवं भक्तों की पूजा ग्रहण करते हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण के देहावसान के बाद उनकी पवित्र भस्मास्थि एक ताँबे के कलश में संचित कर शिष्य लोग उसकी नित्य पूजा-अर्चना करते थे। स्वामीजी उसे 'आत्माराम का पात्र' कहते थे। बेलुड़ मठ में ठाकुर-प्रतिष्ठा के दिन स्वामीजी स्वयं अपने कंधे पर उस कलश को रखकर नयी मठ भूमि की ओर चले। मार्ग में उन्होंने शिष्य (शरत् चन्द्र चक्रवर्ती) से कहा—"श्री गुरुदेव ने मुझसे कहा था कि तू मुझे कन्धे पर चढ़ाकर जहाँ ले जायगा, मैं वहीं

जाऊँगा और रहूँगा, चाहे वह स्थान वृक्ष के तले हो या कुटी में। इसीलिए मैं स्वयं उनको कन्धे पर उठाकर नयी मठ भूमि पर ले जा रहा हूँ। निश्चय जान लेना कि श्री गुरुदेव 'बहुजन हिताय' यहाँ दीर्घकाल तक स्थिर रहेंगे।"[3]

बेलुड़ मठ की जमीन के बारे में श्रीमाँ का कहना था— "... मैं बराबर यह देखती थी कि ठाकुर गंगा के उस पार उस जगह में, जहाँ कि आजकल मठ और केले का बगीचा इत्यादि है, वहाँ एक घर में निवास कर रहे हैं। (उस समय बेलुड़ मठ नहीं बना था)"...उनके इस अलौकिक दर्शन से ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीरामकृष्णदेव ने स्वयं ही बेलुड़ मठ के लिए उस स्थान को चुना था।[4]

माँ उस समय बेलुड़ में नीलाम्बर बाबू के उद्यान भवन में रहती थीं। "उस दिन पूर्णिमा थी। बगीचे में कुछ देर तक टहलने के बाद श्री माँ गंगाजी की ओर मुँह करके सीढ़ी पर बैठी हुई थीं।.... ... अकस्मात उन्होंने देखा कि पीछे की ओर से श्रीरामकृष्ण आकर अत्यंत शीघ्रता से गंगाजी में उतर गये और तत्काल ही उनका शरीर गंगाजी में मिल गया। रोमांचित होकर वे देखने लगीं कि ठाकुर गंगाजी के साथ मिल कर एक हो गये। इसी समय कहीं से स्वामी विवेकानन्द आकर 'जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण' उच्चारण करते हुए उस गंगाजल को दोनों हाथों से असंख्य लोगों के मस्तकों पर छिड़कने लगे और उस ब्रह्म वारि के स्पर्श से सब कोई उसी समय मुक्त होने लगे। उस दिन श्रीरामकृष्णदेव ने मुक्तिवारि का रूप धारण कर लिया था।

इस दर्शन का श्रीमाँ के हृदय पर ऐसा गहरा असर हुआ कि कई दिनों तक वे गंगाजी में नहीं उतरीं। कहतीं "यह तो ठाकुर की देह है, कैसे इसमें पैर रखूं?"[5]

बेलुड़ की महिमा के सम्बन्ध में माँ कहती थीं, "अहा, मैं बेलुड़ में कितने आनन्द में थी। जगह भी कितनी शान्त है! हर समय ध्यान लगा ही रहता था।"

......"उस समय (बेलुड़ में रहते समय) लाल, नीले आदि विभिन्न रंगों की ज्योतियों में मन लीन हो जाता था! और दो चार दिन इस प्रकार रहने पर शरीर नहीं रह जाता।"[6]

१२ नवम्बर, १८९८ ई० में कालीमाता के पूजन के पुनीत अवसर पर स्वामीजी संघजननी श्रीमाँ को बाग बाजार से नवीन मठ भूमि में लिवा लाये। श्रीमाँ ने अपने हाथों से पूजा के स्थान को साफ किया और अपने नित्य पूजित ठाकुर के चित्र की वहाँ पर पूजा की। युगावतर श्रीरामकृष्ण देव मठ में अधिष्ठित हुए। युगयुगांतर के लिए बेलुड़ मठ महातीर्थ बन गया।

परन्तु बुद्धिवादी नरेन्द्र नाथ जो भगवान श्री रामकृष्णदेव के स्थूल शरीर में विद्यमान रहने के समय विभिन्न तरीकों से परीक्षा लेने के बाद ही उनकी इस बात पर विश्वास कर सके थे कि "पूर्व युगों में जो राम थे, जो कृष्ण थे, वे ही इस बार रामकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए हैं।' वे क्या इतनी शीघ्रता से विश्वास कर लेते कि इस 'आत्माराम के पात्र' में सचमुच भगवान श्री रामकृष्णदेव वास करते हैं। "दूसरी बार पाश्चात्य देशों में भ्रमण से लौटने के बाद उनके मन में संदेह उठा, "क्या सचमुच श्रीरामकृष्णदेव इस कलश में रहते हैं? मुझे इसकी जाँच करनी होगी।" उन्होंने प्रार्थना की — "हे ठाकुर यदि तुम सचमुच इस कलश में वास करते हो तो तीन दिन के भीतर ग्वालियर के महाराजा को यहाँ ले आओ जो कलकत्ते की अल्पकालीन यात्रा पर आये हुए हैं।"

स्वामीजी इस बात को जानते थे कि महाराजा के यहाँ आने की संभावना बहुत ही कम है। उन्होंने इस प्रार्थना के सम्बन्ध में किसी से भी नहीं कहा और स्वयं इस बात को प्रायः भूल गये। अगले दिन स्वामीजी किसी कार्यवश बाहर गये हुए थे। वहाँ से लौटने के बाद उन्हें पता चला कि ग्वालियर के महाराजा ने अपने भाई को बेलुड़ मठ यह पता लगाने के लिए भेजा था कि स्वामी विवेकानन्द जी हैं या नहीं? अगर वे वहाँ न हो

तो यह संदेश छोड़ देना कि महाराजा की उनसे मिलने की बड़ी इच्छा है क्योंकि अगले दिन ये कलकत्ता छोड़ रहे हैं। स्वामीजी ने जब यह समाचार सुना तो उन्हें अपनी परीक्षा की बात याद आयी। ये दौड़ते हुए सीढ़ी से होकर ठाकुर मंदिर में उपस्थित हुए और वेदी के समक्ष जहाँ 'आत्मा राम का पात्र रखा था, वहाँ बार-बार माथा टेकने लगे। बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द) उस समय मंदिर में उपस्थित थे, यह सब देखकर उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। वे हक्का-बक्का खड़े थे। तब स्वामीजी ने बाबूराम महाराज को तथा वहाँ उपस्थित अन्य साधुओं को अपनी परीक्षा की बात बतलायी।"[३]

"उस समय एक ऐसी घटना घटी जो स्वामी विवेकानन्द की योगशक्ति एवं विश्वास की परिचायक है। उनके निर्भयानन्द नाम के एक शिष्य की अत्यन्त उच्च-ज्वर के कारण उन्मान्द की सी अवस्था हो गयी थी। सब ने उनके बचने की आशा बिल्कुल छोड़ दी। शरीर का तापक्रम एक सौ सात डिग्री फाँरेन हाईट हो गया। स्वामीजी अत्यंत चिंतित थे। अंत में अचानक अन्तः प्रेरणा से आवेशित होकर वे श्रीराम-कृष्ण की पूजा के लिए मंदिर पहुँचे। 'आत्माराम के पात्र' को धोकर वे रुग्ण संन्यासी के लिए चरणामृत ले आये। चरणामृत पान करते ही ज्वर तुरन्त शान्त हो गया। स्वामीजी ने अपने गुरुभाइयों एवं शिष्यों की ओर मुड़कर अत्यंत आनन्द के साथ कहा, "रामकृष्णदेव की शक्ति देखो ! वे क्या नहीं कर सकते ?"[४]

भगवान श्रीरामकृष्णदेव की जाग्रत उपस्थि के सम्बन्ध में 'स्वामी प्रेमानन्द' एवं 'प्रेमानन्देर प्रेम कथा' ना‌ की दो पुस्तकों में कुछ घटनाओं के वर्णन हैं।

बाबूराम महाराज स्वभाव से ही अत्यंत उदार-हृदय पुरुष थे। उनके दयापूर्ण हृदय में अच्छे-बुरे, सत्-असत्, साधु-असाधु सभी के लिए स्थान था। बेलुड़ मठ परिचालन काल में नवागत साधु-ब्रह्मचारियों को जीवन-गठनोपयोगी शिक्षा-दीक्षा देने में उन्हें बहुत क्लेश स्वीकार करना पड़ता था। एक बार पुनः पुनः [illegible] करने के बाद भी जब वे एक दो साधु-ब्रह्मचारियों [illegible] सही रास्ते पर नहीं ला सके, तो वे अत्यंत दुःखित [illegible] उनलोगों को वे जो कुछ भी कहते, वे लोग उ[illegible] अनुपालन नहीं करते। फलःस्वरूप वे सोचने लगे, [illegible] सभी नवागत नासमझ लड़कों को लेकर रहना [illegible] झमेला है। इस तरह कुछ दिन बीतने के बाद भी उन[illegible] इस क्लेशपूर्ण मानसिक स्थिति का अंत नहीं हुआ [illegible] उनके स्नेहपूर्ण उपदेशादि मानो व्यर्थ हो गये। अंत [illegible] कोई उपाय न देखकर उन्होंने मठ छोड़कर कहीं अन्य चले जाने का संकल्प ले लिया। और उसी उद्देश्य से मठ के (दक्षिण) प्रवेश द्वार पर आ उपस्थित हुए 'मठ छोड़कर तो चले जायेंगे, किन्तु कहाँ ?' कुछ [illegible] स्थिर नहीं कर पा रहे थे। फाटक पर जाते ही उन्होंने देखा कि उन्हें रोक रखने के लिए दोनों हाथ फैलाये भगवान श्रीरामकृष्णदेव वहाँ खड़े हैं। मठ परित्याग के लिए बाबूराम महाराज का दृढ़ संकल्प देखकर श्रीराम-कृष्णदेव बोले, "अरे बाबूराम, मुझे छोड़कर तुम कहाँ जा रहे हो ?" उस समय बाबूराम महाराज अत्यंत अप्रतिभ होकर, सिर झुकाये हुए मठ में लौट आये।

उन दिनों बेलुड़ मठ में दो श्रेणी के साधु थे— निरामिष भोजी एवं आमिष भोजी। सुनने में आता है कि तब निरामिष भोजी साधु किसी किसी विषय में थोड़ी-अधिक सुविधादि पाते थे। आमिषभोजी साधुओं को थोड़ी हेय दृष्टि से देखा जाता था। एक रात बाबूराम महाराज ने देखा, भगवान श्रीरामकृष्णदेव आकर उनसे कह रहे हैं, "अरे, ओ बाबूराम, मेरे लड़के लोग थोड़ी मछली वगैरह खाते हैं तो इसको लेकर इतना किच-किच क्यों ?" बाबूराम महाराज श्री श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन पाकर एवं उनकी बात सुनकर अत्यंत अभिभूत हो गये। फलस्वरूप दूसरे ही दिन सुबह में आदमी भेजकर बाजार से उन्होंने अच्छी-अच्छी मछलियाँ मँगवायी। अपने ही हाथों से मछलियाँ काटकर उन्होंने भोजन बनाया और स्वयं परोसकर सभी को परितृप्ति के साथ खिलाया।"[५]

स्वामी रामेश्वरानन्द के संस्मरण: "उस समय मैं बेलुड़ मठ में ठाकुर पूजा करता था। एक दिन बाबूराम महाराज ने मुझे बुलाकर पूछा—"क्यों जी, ठाकुर के कपड़े वगैरह सब ठीक तो है? देखो भैया, जरा अच्छी तरह से देखो। मैं एक नवीन वस्त्र श्री ठाकुर को निवेदित कर उसे पहनने गया तो ठाकुर आकर मुझसे बोले—'अरे बाबूराम, तुम नवीन वस्त्र पहन रहे हो, और तुमने देखा नहीं कि चूहे ने मेरे कुरते को काट दिया है? तुम मुझसे अब और प्रेम नहीं करते क्या?' हम दोनों ने उस समय ठाकुर घर जाकर देखा, वास्तव में ठाकुर की छवि को जो कुरता पहनाया गया था, उसे चूहे ने काट दिया था!"

एक बार बाबूराम महाराज को बिना बताये सेवक लोगों ने दो फतुए (आधी बाँह की कमीज जिसके नीचे भाग में जेब रहती है) बनवाकर उसे आलना (कपड़ा रखने का स्टैंड) पर रख दिया। बाबूराम महाराज उसी फतुए को पहने हुए थे, उन्होंने ध्यान नहीं दिया कि वह नया फतुआ है या पुराना। ठाकुर ने उन्हें दर्शन देकर कहा—"बाबूराम, मेरे पास एक कुरता और तुम्हारे पास दो। लगता है, मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम घटता जा रहा है!" दूसरे दिन उन्होंने एक फतुआ लौटा दिया और ठाकुर के लिए दो कुरते बनवाये।"[10]

"कलकत्ता निवासी एक धनी ब्राह्मण परिवार के घर से बहुत सी वस्तुएँ ठाकुर के भोग के लिए आती थीं। बाबूराम महाराज को दर्शन देकर ठाकुर ने कहा—"अरे, उनलोगों की चीजें मुझे क्यों देते हो? मैं उसे नहीं खा पाता हूँ।" उस समय पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्द बेलुड़ मठ में ही थे। उनके पास जाकर बाबूराम महाराज ने कहा, "नरेन, मैं क्या करूँ, बोलो तो? उन लोगों के घर से प्रतिदिन एक टोकरी फल-मिठाई आती है। आज ठाकुर ने कहा कि वे नहीं खा पाते हैं।" स्वामीजी ने उत्तर दिया—"टोकड़ी लाकर मेरे घर में रख दो। एक-दो करके जितना खा सकूँगा, मैं ही खाऊँगा। अपने शिष्य को तो त्याग नहीं सकता। और जब ठाकुर नहीं खा रहे हैं तो तुम लोग भी मत खाओ और न लड़कों को ही दो।" (ठाकुर कहते थे कि नरेन्द्र के भीतर ज्ञानाग्नि प्रज्ज्वलित है। मारवाड़ियों द्वारा सकामभाव से दी गयी वस्तुएँ न तो स्वयं खाते थे और न लड़कों को ही देते थे। समस्त वस्तुएँ नरेन्द्र को देते और कहते दूसरों के खाने से उसकी भक्ति की हानि होगी, परन्तु नरेन को वह दोष नहीं लगेगा)[11]

एक बार बाबूराम महाराज पूर्व बंगाल (अब बंगला देश) जाने के लिए तैयार हो चुके थे। प्रस्थान के पूर्व वे ठाकुर मंदिर में प्रणाम निवेदन करने गये। उन्हें ले जाने के लिए पूर्व बंगाल से कुछ भक्त लोग आये थे। सब कुछ तैयार था, यहाँ तक कि उन्हें कलकत्ता ले जाने के लिए एक नाव भी लगी हुई थी। ठाकुरमंदिर से नीचे उतरकर उन्होंने कहा, "नहीं, अब मैं नहीं जा सकूँगा।" उस समय जो व्यक्ति ठाकुर मंदिर में थे, उन्होंने बाबूराम महाराजको ठाकुर से बात करते हुए पाया। उनका अन्तिम प्रश्न था, "तो क्या मैं नहीं जाऊँ।" वह व्यक्ति केवल बाबूराम की बात सुन पा रहा था, ठाकुर की नहीं। जब बाबूराम महाराज नीचे आकर बोले: "ना, अब मैं नहीं जा सकूँगा" तब सब ने इसका यही अर्थ लगाया कि ठाकुर ने उन्हें जाने से मना कर दिया है। सभी अवाक थे—सारी तैयारियाँ हो चुकी हैं, फिर भी वे कह रहे कि मैं नहीं जाऊँगा। उस दिन मजबूरन यात्रा स्थगित करनी पड़ी। बाद में समाचार आया कि जिस स्टीमर से वे गोअलन्दा से ढाका जाने वाले थे, वह तूफान में फँसकर डूब गया। तब सब समझ पाये कि उनकी रक्षा के लिए ही ठाकुर ने उन्हें जाने से मना कर दिया।[12]

स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज के सम्बन्ध में एक घटना है। कहा जाता है कि विज्ञान महाराज हमेशा से ही वक्त के अत्यंत पाबन्द व्यक्ति रहे हैं; किन्तु श्रीरामकृष्णदेव के नवीन मंदिर की प्रतिष्ठा करने के पहले जब वे पुराने ठाकुर मन्दिर गये तो वहाँ बहुत देर लगा दी। कारण पूछनेपर उन्होंने बताया, "क्या करूँ? वे

(श्रीरामकृष्ण) तो मुझे छोड़ ही नहीं रहे थे।"[13]

रामकृष्ण मठ एवं मिशन के द्वितीय महाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी शिवानन्दजी महाराज (महापुरुषमहाराज) मठ में भगवान श्रीरामकृष्णदेव की जाग्रत उपस्थिति की प्रत्यक्ष अनुभूति करते थे। श्री ठाकुर की सेवा अर्चना में किसी प्रकार की भूल-त्रुटि न हो, इस ओर उनकी अत्यंत सावधान दृष्टि थी। एक दिन उन्होंने मठ के माहात्म्य के बारे में सबसे कहा—"बेलुड़ मठ क्या मामूली स्थान है? स्वयं शिवावतार स्वामीजी यहाँ निवास करते थे और यहीं उन्होंने समाधि-योग से शरीर छोड़ा था, और अभी भी वे सूक्ष्म शरीर में यहीं विराजमान हैं। वे दिखायी पड़ते हैं।" (इस सम्बन्ध में महादेव मुखर्जी एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखते हैं ...."इतने में महापुरुषजी बाहर आये और स्वामी जी के कक्ष द्वार के पास खड़े होकर कमरे के भीतर देखते हुए तन्मय हो गये। कुछ देर तक खड़े रहने के बाद एकाएक बोल उठें— "स्वामी जी, प्रातः प्रणाम, स्वामीजी, प्रातः प्रणाम, स्वामीजी प्रातः प्रणाम।"............उसके बाद धीरे-धीरे उन्होंने कहा— "आज बड़ा शुभ दिन है। स्वामीजी महाराज का दर्शन हुआ। आज प्रातः स्वामीजी के प्रातः भ्रमण के उपरान्त कमरे में लौटते ही भेंट हो गयी—देखा, आनन्द से भरपूर होकर बैठे हैं।")[14] यह मठ ठाकुर ने ही बनाया है। श्री भगवान के रूप में वे सर्वत्र रहने पर भी इस मठ में वे विशेष रूप से हैं। बड़े भाग्य से इस मठ में निवास होता है। बेटा, तुमलोग बहुत सावधानी से रहना। जीवित ठाकुर की सेवा है। तुम्हारा जीवन भी धन्य हो जायगा और हम लोग भी धन्य हो जायेंगे। यह इस युग का महान तीर्थ है।"

मंदिर के पुजारियों को सावधान करते हुए वे प्रायः कहते—"बहुत सावधानी से काम करना। प्रभु जाग्रत हैं। उनकी सेवा बहुत सावधानी से करनी होगी। जब कोई महापुरुष महाराज के दर्शन के लिए जाता तो उनका प्रथम प्रश्न होता था—'मंदिर में जाकर श्री ठाकुर का दर्शन किया है या नहीं?' यदि वे सुनते कि पहले श्री ठाकुर का दर्शन बिना किये कोई उनके पास आया है तो वे बहुत असंतुष्ट होते थे। उनका विश्वास था कि श्री ठाकुर अपने पार्षदों के साथ यहाँ साक्षात् विराजमान है। भक्तों से कहते—"... श्री ठाकुर मंदिर में जीवित बैठे हैं, उनसे भक्ति, ... ज्ञान, विवेक, वैराग्य, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जो ... माँगोगे, मिल जायगा।"[15] इस सम्बन्ध में शिवानन्द स्मृति संग्रह में अनेक घटनाओं के उल्लेख हैं। स्वामी ज्ञानदानन्द अपने संस्मरण में लिखते हैं—"उस समय मैं बेलुड़ मठ में श्री मन्दिर की पूजा करता था। एक दिन ठाकुर का प्रसाद फल, मिठाई आदि महापुरुष महाराज को देते ही वह उसे देखकर तथा हाथ में लेकर बोल उठे—"ठाकुर की यह कैसी सेवा करते हो जी? केले और नारंगी में बहुत से रेशे रह गये हैं। अच्छी तरह देखकर देना, भूल न हो। श्री श्री ठाकुर तो यहाँ जीवित विराजमान हैं, बहुत सावधानी से पूजा करना। वह पूजा ग्रहण करते हैं, इसे मैं प्रत्यक्ष देखता हूँ।"..........एक दिन ग्रीष्म ऋतु में बहुत गरमी पड़ रही थी। मैं उनके पास गया। उन्होंने मुझसे पूछा—"बहुत गरमी है, श्री श्रीठाकुर को हवा करते हो या नहीं?"

मैं—जी महाराज, पंखा झलता हूँ।

महापुरुष जी—कितने समय तक झलते हो?

मैं—चार पाँच मिनट।

महापुरुषजी—नहीं, अधिक समय तक ध्यान से पंखा झलना। ठाकुर का शरीर दाबाते हो?

मैं—नहीं तो।

महापुरुष महाराज (हाथ-पैर दबाने का ढंग दिखाकर) बोले—"मन ही मन इस ढंग से ठाकुर का अंग दबाना, चरण सेवा करना।" इतना कहकर वह अपना शरीर दबा-दबा कर दिखाने लगे।[16]

एक अन्य संन्यासी अपने संस्मरण में लिखते हैं: 'श्री ठाकुर का प्रसाद उनके लिए लाया जाता था,

उसमें उँगली डुबोकर वे जीभ से छुला लेते थे और किसी चीज में दोष-त्रुटि होने पर बहुत ही असंतोष प्रकट करते थे। किसी दिन कहते थे—"आज खीर नीचे से जल गयी है, प्रभाकर को बुलाओ।" रसोइया प्रभाकर आता, हाथ जोड़कर खड़ा होता। वे कहते—"प्रभाकर, आज खीर नीचे से जल गयी है, ऐसी जली हुई खीर तुमने श्री ठाकुर के भोग में क्यों दी? ऐसे भोग नष्ट करना उचित नहीं हुआ। भविष्य में ऐसा कभी न हो।" प्रभाकर ने हाथ जोड़कर कहा—"नहीं बाबा, फिर कभी ऐसा नहीं होगा।" रसोइये के चले जाने पर उन्होंने सेवक से कहा—"देखो, इसीलिए मैं ठाकुर के जो जो भोग होते हैं, सब प्रसाद थोड़ा-थोड़ा चख लेता हूँ·······। हमारे जीवित ठाकुर यहाँ बैठे हुए हैं, वे सब कुछ ग्रहण करते हैं। मुँह में देते ही मैं समझ जाता हूँ कि ठाकुर ने खाया है या नहीं। मैं उनका बच्चा यहाँ उनकी सेवा-पूजा का भार लेकर बैठा हुआ हूँ। अपने जीते जी उनकी सेवा में जरा भी त्रुटि नहीं होने दूँगा। असली बात है ठाकुर सेवा। 'तस्मिन् तुष्टे जगत् तुष्टम्।'"[17]

महापुरुष महाराज प्रायः कहते—"देखो, यह मठ-भवन श्री ठाकुर का है। ठाकुर सदा यहाँ विराज रहे हैं। कहीं मैला आदि पड़ा न रहे। उनकी ओर सभी की दृष्टि रहनी चाहिए। ठाकुर मैल-गन्दगी बिलकुल पसंद नहीं करते थे।" इस सम्बन्ध में निम्नलिखित घटनाएँ उल्लेखनीय हैं। एक संन्यासी अपने संस्मरण में लिखते हैं—"इन दिनों मैं मठ भवन में झाड़ू लगाता था, किन्तु वही मेरा एकमात्र काम नहीं था।······ एक दिन झाड़ू लगाते हुए मैंने देखा कि दिन बहुत चढ़ गया है, धूप भी तेज हो गयी है, इस कारण गंगा के किनारेवाले चबूतरे पर झाड़ू न लगाकर मैं शीघ्रता से बाजार चला गया।·······मेरे आते ही उन्होंने (महापुरुष महाराज ने) असंतोष प्रकट करते हुए पूछा—"आज चबूतरे पर झाड़ू नहीं दिया था?" मैंने उत्तर दिया—"आज झाड़ू लगाते हुए धूप तेज हो गयी थी, इस कारण चबूतरा न झाड़कर मैं बाजार चला गया था।" सुनकर गंभीर स्वर से उन्होंने कहा—"ऐसा आगे कभी न हो, ठाकुर रोज गंगा किनारे टहलने आते हैं। गन्दे स्थान में घूमने से उन्हें कष्ट होता है। यह ठाकुर का मठ है। वे हर स्थान में घूमते फिरते हैं।" 'श्री ठाकुर को घूमने में कष्ट होता है'—इस बात को सुनकर मेरा अन्तर पश्चाताप से भर गया। आँखों में आँसू आ गये, मैंने तुरन्त हाथ जोड़कर रोते हुए कहा—"महाराज, ऐसा फिर कभी न होगा।" मेरे हृदय से रुलाई आ रही थी, उसे मैं दबा नहीं सका। चिल्लाकर रो पड़ा।

तब महापुरुष महाराज ने प्यार से मेरे आँसू पोंछते हुए कहा—"सुबह जिस दिन समय न मिले, उस दिन तीसरे पहर झाड़ू लगा देना क्योंकि ठाकुर उसी समय घूमने निकलते हैं।"[18]

स्वामी ज्ञानदानन्द लिखते हैं—"महापुरुष महाराज मठ में आ गये। एक दिन मैं मठ के आम्रवृक्ष के नीचे आँगन में झाड़ू दे रहा था। झाड़ू देने के बाद महापुरुष आँगन में उतरे और आँगन की ओर देखते हुए बोले—"अरे, अरे! वहाँ श्री श्री ठाकुर टहलते हैं, इधर धूल जमी हुई है, उनके पैरों में लग जायगी और उधर दिया-सलाई की सलाइयाँ पड़ी हुई हैं। बहुत अच्छी तरह साफ करना ताकि श्री श्री ठाकुर आनन्द से यहाँ टहल सकें और उनके पैरों में कुछ न गड़े।" उनकी बात सुनकर मुझे अनुभव होने लगा कि श्री श्री ठाकुर मठ में सर्वत्र विराजमान हैं, उन्हें हम देख नहीं सकते, किन्तु वह सबको देखते हैं।"[19]

स्वामी निखिलात्मानन्द अपने संस्मरण 'महापुरुषजी के सान्निध्य में' में लिखते हैं: "उस समय मैं मठ के ठाकुर मंदिर को पोंछता था। वर्षा काल का समय था। मंदिर के दक्षिण ओर का बरामदा वृष्टि से भींग जाता था एक दिन मैंने वृष्टि के बाद उस बरामदे को पोंछा नहीं था। महापुरुष महाराज ने अपने कमरे से वह देखा और मुझे बुलवाया। कमरे में जाते ही मुझसे कहा—"क्योंजी, तुम कैसी ठाकुर सेवा करते हो? ठाकुर वृष्टि के जल के कारण बरामदे में टहल नहीं सकते, उनके पैर भींग

रहे हैं। अब तुम लोग क्या करते हो? मैं तो देखता हूँ—ठाकुर रोज तीसरे पहर उस बरामदे में टहलते हैं, बेटा, ठाकुर को किसी तरह कष्ट न हो, उस पर ध्यान रखना। वे हमारे प्राणों के प्राण तथा संसार की आत्मा हैं। तस्मिन तुष्टे जगत् तुष्टम्।"[२०]

श्री श्री ठाकुर महापुरुष महाराज के समक्ष सशरीर उपस्थित होकर बातें करते। महापुरुष महाराज के मंदिर में जाते ही वे प्रत्यक्ष प्रकट होकर, उनकी ठुड्डी पकड़कर प्यार से मुँह चूम लेते थे। महापुरुष महाराज के शिष्य श्री यदुनाथ मजूमदार लिखते हैं—"⋯⋯उनके अन्तिम बारह वर्ष के सेवक साथी स्वामी अपूर्वानन्दजी के मुख से सुना था कि महापुरुष महाराज जब भोर में पुराने ठाकुर मंदिर में जाते थे, श्री श्रीठाकुर आगे आकर उनकी ठुड्डी पकड़कर उन्हें प्यार जताते थे। केवल तीन दिन ही इस नियम में व्यतिक्रम हुआ था। उससे महापुरुष महाराज बहुत ही चिन्तित और उद्विग्न हुए थे और श्री श्री ठाकुर की उदासीनता से वह बहुत ही व्यथित होकर रोते हुए दिन बिताते थे। तीन दिन के पश्चात् मठ की गौशाला में आग लग गयी। गौशाला में पुआल की छाजन थी, किन्तु भगवान की कृपा से किसी गाय को कुछ हानि नहीं हुई। इस घटना के अनन्तर महापुरुष जी ने कहा था—"दुर्दैव टल गया। किसी प्रकार का कोई सेवापराध हुआ होगा। वह थोड़े ही में टल गया।"

बेलुड़ मठ में रात्रि समाप्त होने से पहले मंगल आरती के समय ठाकुर मंदिर का दरवाजा खुलता है। इसमें कभी व्यतिक्रम नहीं होता। एक दिन ग्रीष्म-ऋतु में रात के तीन बजे महापुरुष जी अपने कमरे से निकले और छत के ऊपर से जाकर चाभी लाये और ठाकुर मन्दिर का द्वार खोला। अन्य साधुओं को इसका बाद में पता लगा, किन्तु दूसरे दिन किसी को महापुरुषजी से उसका कारण पूछने का साहस न हुआ। दिन बीत जाने पर शाम को एक साधु ने उनसे उस विषय में प्रश्न किया। उन्होंने कहा—"रात के तीन बजे श्री श्री ठाकुर ने कहा कि गरमी से मुझे कष्ट हो रहा है इस कारण मन्दिर का दरवाजा खोलकर मैं श्री श्री ठाकुर को हवा दे रहा था।" साधुजी ने पुनः पूछा—"श्री श्री ठाकुर ने और कुछ कहा था?"

महापुरुषजी—"हाँ, और भी कहा था कि म[illegible] के भीतरी दरवाजे के बाहर कितने कँटीले पौधे उ[illegible] आये हैं कि चला नहीं जाता और यह भी कहा था कि [illegible] सन्ध्या को जो फूल की माला दी गयी थी वह बहुत ही सुन्दर थी।"

दूसरे दिन सुबह सब लोगों ने मिलकर उन कँटीले पौधों को उखाड़कर उस स्थान को साफ कर दिया और जिन्होंने श्री श्री ठाकुर के लिए माला गूँथी थी, वह भी उस बात को सुनकर आनन्दित हुए।"[२१]

एक अन्य घटना का उल्लेख स्वामी निखिलात्मानन्दजी ने अपने संस्मरण में किया है⋯⋯'उनकी करुणा की अनेक घटनाएँ मेरे अन्तर की चीजें हैं। एक दिन हमलोग प्रातःकाल प्रतिदिन की तरह उन्हें प्रणाम करने गये। प्रणाम करने के बाद कुछ खेद के साथ उन्होंने भावावेश में आकर कहा—"तुमलोग क्या कर रहे हो? श्री ठाकुर को प्रसन्न किए बिना कुछ भी नहीं होगा। ठाकुर भक्तिप्रिय थे। उनकी प्रीति प्राप्त करना ही साधुजीवन का लक्ष्य है। आज ठाकुर को बहुत ही विषण्ण देखा। भोर में मैं ठाकुर-मन्दिर पहुँचा तो देखा कि वे लाठी लिए मेरे पास आ रहे हैं। आकर क्रोध के स्वर से उन्होंने कहा—'लड़के जप-ध्यान कहाँ कर रहे हैं? तू उन्हें नहीं देखता?' अन्य दिन जब मैं मंदिर में जाता था तो मेरी ठुड्डी पकड़कर प्यार से मेरा मुँह चूम लेते थे, मैं उनके पुत्र के समान हूँ, इसलिए आज तुम्हीं लोगों के लिए वे क्रोधित हो पड़े हैं। लाठी लेकर मुझे मारने आये थे। सबसे कह दे—आज से सब लोग नियमित भाव से खूब जप ध्यान करें। भोर में और सन्ध्या को आरती के समय सब लोग ठाकुर-मन्दिर में जायँ और जब तक वह खुला रहे तब तक कोई न कोई बैठकर जप किया करे।" उस दिन से हम सब लोग

खूब जप ध्यान करने लगे। इससे वे भी बहुत प्रसन्न हुए।[22]

अभी भी कितने ही भाग्यवान भक्तों को यहाँ भगवान श्रीरामकृष्णदेव की जाग्रत उपस्थिति की अनुभूति होती है। प्रभु अपनी लीला कितने ढंग से करते हैं, कौन जानता है ?—'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'। संपूर्ण विश्व के नर-नारियों के लिए आज बेलुड़ मठ पूजा, श्रद्धा एवं उपासना का केन्द्र बना हुआ है। भारत एवं भारत के बाहर भी संसार के हरेक भाग से प्रतिदिन विभिन्न धर्म एवं मतों को मानने वाले हजारों दर्शनार्थी यहाँ आकर त्याग मूर्ति, समन्वयाचार्य भगवान श्रीरामकृष्णदेव को श्रद्धा निवेदित कर जाते हैं। पर्यटक पर्यटन के उद्देश्य से एवं विभिन्न वास्तुकला एवं शिल्पों के समन्वय रूप अद्भुत देव मन्दिर देखने आते हैं, भोग सुख चाहने वाले सांसारिक उन्नति की कामना से, त्रितापदग्ध जीव शांतिजल की आशा में, आर्त संकट निवारण के लिए, जिज्ञासु अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए, धर्मपिपासु धर्म की प्यास बुझाने, मुमुक्षु मोक्ष प्राप्ति की चाह से और अन्य कितने लोग कितनी ही प्रकार की कामनाएँ लेकर बेलुड़ मठ के इस जाग्रत देव की शरण ग्रहण करते हैं, जो भव रोग के कुशल वैद्य हैं—'यामि गुरुं शरणं भव वैद्यम्'। बेलुड़ मठ की स्थापना के बाद परम पूज्य स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—"श्री गुरुदेव की इच्छा से आज उनके धर्मक्षेत्र की प्रतिष्ठा हो गयी। बारह वर्ष की चिन्ता का बोझ आज सिर से उतर गया। उस दिन जब मठ भूमि पर श्रीरामकृष्णदेव की प्राण प्रतिष्ठा की, तब ऐसा लगा मानो यहाँ से उनके भावों का विकास होकर चराचर विश्व में छा गया है। यह मठ विद्या एवं साधना का एक केन्द्र स्थान होगा। विश्व समन्वय की जो किरण यहाँ से प्रकाशित होगी, उससे सारा जगत् उद्भासित हो जायगा।"

---

1. विवेकानन्द साहित्य पृ०सं०-83 (षष्ठ भाग) सं०1972
2. ,, ,, (पृ० सं०-129) ,, ,,
3. ,, ,, (पृ० सं०-79) ,, ,,
4. माँ सारदा (पृ० सं०-180) स्वामी अपूर्वानन्द तृ० सं०
5. ,, ,, (पृ० सं०-171)
6. ,, ,, (पृ० सं०-141) ,, ,, ,,
7. दि लाइफ ऑव स्वामी विवेकानन्द (बाइ इस्टर्न एण्ड वेस्टर्न डिसाइपल्स) पृ० सं०-612 1981 संस्करण
8. ,, ,, (पृ० सं०-612)
9. स्वामी प्रेमानन्द (बंगला पु०) (पृ० सं०-40 एवं 41) (श्री रामकृष्ण प्रेमानन्द आश्रम, आंट पुर, हुगली)
10. प्रेमानन्देर प्रेमकथा (पृ० सं०-56) (ब्र० अक्षयचैतन्य)
11. ,, ,, (पृ० सं०-57 एवं 58)
12. स्वामी प्रेमानन्द के संस्मरण, स्वामी वीरेश्वरानन्द वेदान्त केसरी अक्टूबर 1937, (पृ० सं०-393)
13. प्रत्यक्षदर्शी स्मृति पटे. स्वामी विज्ञानन्द (पृ० सं०-168)
14. शिवानन्द स्मृति संग्रह, द्वि० ख० (पृ० सं०-445)
15. ,, ,, ,, तृ० ख० (पृ० सं०-274)
16. ,, ,, ,, प्र० ख० (पृ० सं०-275)
17. ,, ,, ,, तृ० ख० (पृ० सं०-531)
18. ,, ,, ,, द्वि० ख० (पृ० सं०-451 एवं 452)
19. ,, ,, ,, प्र० ख० (पृ० सं०-265 एवं 266
20. ,, ,, ,, तृ० ख० (पृ० सं०-49)
21. ,, ,, ,, प्र० ख० (पृ० सं०-312 एवं 313)
22. ,, ,, ,, तृ० ख० (प्र० सं०-48)

मंदिर प्रतिष्ठा की अर्द्ध शताब्दी के अवसर पर :

बेलुड़ मठ का श्रीरामकृष्ण मंदिर

—ब्रह्मचारी रामेश्वर
बेलुड़ मठ

'देवानामर्चनं यत्र ध्यानं धर्मानुसारतः।
प्रार्थनं भजनं नाम क्रियते प्रतयात्म भिः॥
समागते सुधीरैश्च भक्तिभाव प्रमोदितैः।
धीमद्भिरल्पधोभिर्वा मन्दिरं तत् प्रकीर्त्यते ॥'

—अर्थात् वह स्थान जहाँ भगवद्भक्त एवं विभिन्न प्रकार के साधक, अज्ञ से लेकर विद्वान तक, ईश्वर के प्रति आन्तरिक प्रेम लेकर समवेत होते हैं तथा परमेश्वर की पूजा, प्रार्थना एवं ध्यान करते हैं, मन्दिर कहलाता है।

अतएव मन्दिर ईश्वर का वासस्थान तथा भक्तों की पूजास्थली है। यद्यपि ईश्वर सर्वव्यापी है एवं उनकी पूजा सर्वत्र की जा सकती है, फिर भी उनकी उपस्थिति का अनुभव अन्य स्थानों की अपेक्षा मन्दिर में कहीं अधिक होता है। संसार में अन्य सभी भवनों का निर्माण मनुष्य की विभिन्न इच्छाओं की पूर्ति के लिए किया जाता है, परन्तु मन्दिर का निर्माण मुख्य रूप से ईश्वर के साथ मानव का सम्पर्क स्थापित करने के उद्देश्य से किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि मन्दिर मानव और ईश्वर के बीच का सेतु है।

ऐसा ही एक महासेतु है बेलुड़ मठ का श्री रामकृष्ण मन्दिर। आइए, आज इस महासेतु की अन्तर्कथा का स्मरण तथा इसका सम्यक् दर्शन कर अपने जीवन को धन्य बनावें। (मन्दिर का चित्र मुख्य पृष्ठ पर देखें)

स्वामीजी की मन्दिर कल्पना : स्वामी विवेकानन्द की महती इच्छा थी कि पतित-पावनी जाह्नवी के तट पर एक पत्थर का मन्दिर निर्माण कर उसके अन्दर भगवान श्री रामकृष्णदेव की पवित्र भस्मास्थि सुरक्षित रखी जाय तथा युगावतार की एक मूर्ति स्थापित कर उनकी नित्य पूजा-अर्चना की जाय। अपनी इस हार्दिक इच्छा को उन्होंने सर्वप्रथम प्रमदादास मित्र के नाम लिखे एक पत्र (२६ मई १८९०) में व्यक्त किया था। गंगा के पश्चिमी तट पर बना बेलुड़ मठ का श्री रामकृष्ण मंदिर स्वामीजी की इसी महती इच्छा का मूर्तरूप है।

देश-विदेश में भ्रमण करते समय स्वामीजी विभिन्न स्थापत्यों (Architectures) का अध्ययन कर रहे थे क्योंकि उनका कहना था, "प्राच्य एवं पाश्चात्य कला-जगत में जो भी सर्वश्रेष्ठ है उसे एक साथ (श्री रामकृष्ण मन्दिर में) लाने की मेरी इच्छा है।" अपने देश के प्रायः सभी प्रान्तों के स्थापत्यों का उन्होंने विस्तृत अध्ययन किया था। मुगल स्थापत्य-कलाओं तथा राजपूत चित्र-कलाओं की वे बहुत प्रसंशा किया करते थे। अपने विदेश भ्रमण-काल में वे जिस किसी भी देश में जाते, तो वहाँ के अजायबघरों, चर्चों, प्रधान गिरजाघरों (Cathedrals) एवं कला-कक्षों (Art gallaries) आदि को जरूर देखा करते। फ्रेंच कला के प्रति उनका झुकाव अधिक था।

१८९७ ई० के अन्तिम भाग में जब स्वामी विवेकानन्द जी के साथ स्वामी विज्ञानानन्द जी (श्री रामकृष्णदेव के लीलापार्षद तथा पूर्वाश्रम में सरकार के एक उच्च पदस्थ सिविल इंजीनियर) भारत के उत्तर-पश्चिम प्रान्तों में भ्रमण कर रहे थे, उस समय वे भारत के स्थापत्य शिल्प के संबंध में पुंखानुपुंख रूप से (सूक्ष्म रूप से) पर्यवेक्षण और श्री रामकृष्ण मन्दिर कैसा होना चाहिए; इस विषय की विवेचना करते थे। .... स्वामीजी नीलाम्बर मुखर्जी के बगीचे (बेलुड़) में गंगा तट पर टहलते हुए एक दिन स्वामी विज्ञानानन्द को बुलाकर, वह मन्दिर कहाँ, किस ढंग से तैयार होगा, उस विषय में विस्तार के साथ कहने लगे। मन्दिर का वर्णन समाप्त करके स्वामीजी ने उसका एक नक्शा तैयार करने का निर्देश देते हुए कहा—"यह शरीर उतने दिनों तक नहीं रहेगा तो भी मैं ऊपर से देखूँगा।"[1] स्वामी विज्ञानानन्द जी ने स्वामीजी द्वारा परिकल्पित मन्दिर का एक नक्शा बनाकर उन्हें दिखाया। स्वामीजी उस नक्शे को देखकर बहुत खुश हुए तथा उसका अनुमोदन भी कर दिया।

स्वामी विज्ञानानन्द जी कृत नक्शे को दिखाते हुए स्वामीजी ने एक दिन रणदा प्रसाद दासगुप्त (कलकत्ता जुबिली आर्ट अकादमी के अध्यापक तथा संस्थापक) से कहा था—"इस भावी मन्दिर के निर्माण में प्राच्य तथा पाश्चात्य सभी शिल्प कलाओं का समन्वय करने की मेरी इच्छा है। मैं पृथ्वी भर में घूमकर स्थापत्य के संबंध में जितने भाव लाया हूँ, उन सभी को इस मन्दिर के निर्माण में विकसित करने की चेष्टा करूँगा। बहुत से सटे हुए स्तम्भों पर एक विराट् प्रार्थनागृह तैयार होगा। इसकी दीवारों पर सैकड़ों खिले हुए कमल प्रस्फुटित होंगे। प्रार्थनागृह इतना बड़ा बनाना होगा कि उसमें बैठकर हजार व्यक्ति एक साथ जप ध्यान कर सकें। श्री रामकृष्ण-मन्दिर तथा प्रार्थनागृह को इस प्रकार एक साथ तैयार करना होगा कि दूर से देखने पर ठीक ओंकार की धारणा हो। मन्दिर के बीच में एक राजहंस पर श्री रामकृष्ण की मूर्ति रहेगी। द्वार पर दोनों ओर दो मूर्तियाँ इस प्रकार रहेंगी—एक सिंह और एक भेड़ मित्रता से एक दूसरे को चाट रहे हैं—अर्थात् महाशक्ति और महानम्रता मानो प्रेम से एकत्र हो गये हैं। मन में ये सब भाव हैं। अब यदि जीवन रहा तो उन्हें कार्य में परिणत कर जाऊँगा। नहीं तो भविष्य की पीढ़ी के लोग उनको धीरे-धीरे कार्यरूप में परिणत कर सकें तो करेंगे।"[2]

स्वामी अखंडानन्दजी (श्री रामकृष्णदेव के लीला-पार्षद) के साथ स्वामीजी की, मन्दिर के संबंध में जो विवेचना हुई थी, उसका उल्लेख करते हुए परवर्तीकाल में स्वामी अखंडानन्द जी ने लिखा था "मैंने उनके निकट भावी मन्दिर के नक्शे (स्वामी विज्ञानानन्द कृत) की बात उठायी। उसे सुनकर .... कहाँ, किस प्रकार उनका वह अर्धचन्द्राकार मन्दिर प्रतिष्ठित होगा एवं मन्दिर की दीवारों पर बड़ी-बड़ी ताखों (Niches) में किस प्रकार विभिन्न देव-देवियों तथा पृथ्वी के महा-पुरुषों के विग्रह स्थापित होंगे एवं किस प्रकार भगवान श्री रामकृष्णदेव की वेदी के ऊपर हीरा चुनी-पन्ना खचित सदा समुज्ज्वल एक ॐकार रहेगा, उसे उन्होंने अच्छी तरह समझाया। हीरा-चुनी की बात सुनते ही मैंने उन्हें टोककर कहा, क्या आप सोचते हैं कि इस महानिर्धन देश में, खासकर संन्यासियों के मठ में, ये सब अनावश्यक तथा अपव्ययस्वरूप ऐश्वर्य लाने से इसका फल अच्छा होगा? इसके उत्तर में उस समय जिस पाण्डित्य-पूर्ण भाषा में उन्होंने इस नवयुग के क्रमाभि व्यक्ति की अवतारणा की थी, उसमें से सिर्फ एक बात मुझे याद है। सर्वप्रथम ही उन्होने कहा, 'इस पुनरभ्युदय का एक वैशिष्ट्य है। अतीत-काल में जिस प्रकार पृथ्वी के सभी देशों की सभी जातियों के अभ्युदय के साथ-साथ कला का भी विकास हुआ था—उसी प्रकार इस नवयुग में भी उपयोगी शिल्प आदि सभ्यता के सभी अंगों का विकास अवश्यम्भावी है'।"[3]

४ जुलाई १९०२ ई० को स्वामीजी का देहत्याग हो गया। अतएव मन्दिर संबंधी अपनी कल्पना को रूपायित होते वे नहीं देख सके। किन्तु उनके निकट यह एक कल्पना मात्र नहीं थी। उन्होंने कहा था, "समय पर सब होगा।" उनके द्वारा परिकल्पित मन्दिर के नक्शे को उनके गुरुभाइयों ने पवित्र स्मृति-चिह्न-स्वरूप संयोग कर रखा था।

भित्तिस्थापन : स्वामीजी के तिरोधान के दीर्घकाल (करीब २१ वर्ष) बाद महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द जी, श्री रामकृष्णदेव के लीला पार्षद एवं रामकृष्ण मठ-मिशन के द्वितीय अध्यक्ष) ने १३ मार्च १९२९ ई० को श्री रामकृष्णदेव की जन्मतिथि के शुभ अवसर पर मन्दिर का भित्तिस्थापन किया। श्री रामकृष्णदेव के जीवित लीलापार्षदों में स्वामी अभेदानन्द, स्वामी विज्ञानानन्द एवं मास्टर महाशय (श्री रामकृष्ण वचनामृत के लेखक, श्री 'म') उस समय उपस्थित थे। मन्दिर का भित्तिस्थापन कर महापुरुष महाराज ने कहा था, "ठाकुर! लाज रखना।"[4]

परन्तु मन्दिर का निर्माण कार्य आरम्भ करने पर इंजिनियरों ने महापुरुष महाराज द्वारा स्थापित भित्ति को करीब १०० फुट दक्षिण की ओर (वर्तमान मन्दिर के स्थान पर) खिसकाने का परामर्श दिया। महापुरुष महाराज उस समय स्थूल शरीर में नहीं थे। इंजिनियरों के परामर्शनुसार स्वामी विज्ञानानन्द जी ने १६ जुलाई १९३५ ई० (मंगलवार 'पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र, दक्षिणायन संक्रान्ति, गुरु पूर्णिमा तिथि)[5] को निर्दिष्ट स्थान पर पुनर्भितिस्थापन किया। गोपेश कृष्ण सरकार ने भित्ति-स्थापन काल की एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है—"आनुष्ठानिक भित्तिस्थापन के दिन सुबह सवा आठ बजे के भीतर ही निर्दिष्ट स्थान पर महाराज (स्वामी विज्ञानानन्द जी) के आने की बात थी। वही अनुष्ठान का निर्धारित समय था। हमलोग सभी पहले से ही मौजूद थे। महाराज किसी भी कार्य में कभी देर नहीं करते थे। बल्कि वे घड़ी के आगे-आगे चलते, पीछे कभी नहीं। उनके इस अभ्यास की बात सुविदि थी। किन्तु उस दिन इसका व्यक्तिक्रम हुआ। स आठ बज गये, तब भी वे नहीं आये। उपस्थित स लोग चिन्तत हो उठे। सुना, वे श्री श्री ठाकुर पुराने मन्दिर में हैं। पूजा के लिए पुष्प लेकर वे उपस्थित हुए तब साढ़े आठ बज चुके थे। पूजनं सनत महाराज (स्वामी प्रबोधानन्द जी) ने अनुयोग स्वर में कहा, 'महाराज' सवा आठ तो बज चुके हैं महाराज ने उत्तर दिया, 'क्या करूँ' (ठाकुर) छोड़ नहीं रहे थे।' अर्थात् भित्तिस्थापन करने के पह वे श्री श्री ठाकुर की अनुमति एवं आशीर्वाद प्रा करने गये थे, मन्दिर में श्री श्री ठाकुर एवं उनके वी भाव का आदान-प्रदान चल रहा था, ठाकुर उनक सहज ही छोड़ना नहीं चाह रहे थे अथवा महाराज ठाकुर को छोड़कर आ नहीं पा रहे थे। यही बात थी महाराज की बात सुनकर उस दिन मैं स्तम्भित ह गया था।"[6]

भित्तिस्थापन के समय एक और अद्भुत घटना हुई भित्तिस्थापन के स्थान पर सर्वप्रथम गंगाजल छिड़क गया। इसके बाद उस स्थान पर पुष्पांजलि देने के लिए विज्ञान महाराज हाथ बढ़ाकर पुष्प-पात्र से पुष्प ले ही रहे थे, तभी उसमें से एक श्वेत कमल एव एक बिल्वपत्र भित्तिस्थापन के स्थान पर अपने आप जा गिरा। बाद में विज्ञान महाराज ने पुष्पांजलि दी। अनुष्ठान समाप्ति के बाद विज्ञान महाराज ने कहा, "स्वामीजी ने मुझे इस मन्दिर का नक्शा बनाने को कहा। मैंने भी एक कागज पर पेंसिल की सहायता से नक्शा बनाकर स्वामीजी को दिखाया। उसे देखकर वे बहुत खुश हुए एवं किस स्थान पर मन्दिर होगा, यह भी उन्होंने अँगुली से निर्देश किया।

मैंने कहा, 'स्वामीजी! आप के रहते, ठाकुर का मन्दिर निर्मित हो, तो बहुत अच्छा होगा।' तब स्वामीजी बोले, 'मैं ऊपर से देखूंगा, पेसन।' इसीलिए आज स्वामीजी इस शुभकार्य में स्वयं वायुरूप में आकर

पुष्पांजलि दे गये ।''' पूज्यपाद विज्ञान महाराज के पूर्वाश्रम का नाम 'हरिप्रसन्न' था। स्वामीजी प्यार से उन्हें 'पेसन' कहकर पुकारते थे।

निर्माणकार्य : महापुरुष महाराज द्वारा भित्ति-स्थापन होने के बाद मन्दिर निर्माण का कार्य उस समय के एक सुविख्यात स्थपति एवं भवन-निर्माण संस्था 'मार्टिन बर्न एण्ड कम्पनी, कलकत्ता' को दिया गया। स्वामीजी द्वारा अनुमोदित तथा स्वामी विज्ञानानन्दजी कृत नक्शे में तीन प्रधान विशेषताएँ थीं—गुम्बज वाला गर्भमन्दिर, यूरोपीय चर्च की तरह गर्भमन्दिर के साथ संलग्न नाट्यमन्दिर तथा मन्दिर का वास्तुशिल्पीय गठन (Architectural moulding) भारतीय शैली के अनुसार। इन तीनों विशेषताओं को अपरिवर्तित रखते हुए कम्पनी से एक नया नक्शा बनाने को कहा गया ताकि मन्दिर स्थापत्य शिल्प की दृष्टि से सुन्दर एवं विशाल हो, कम्पनी की ओर से दो नक्शे प्रस्तुत किये गये जिसमें से श्री गोपेश कृष्ण सरकार एवं श्री सुशील बाबू कृत नक्शा के अनुसार मन्दिर-निर्माण करने की अनुमति दी गयी।

किन्तु प्रथम भित्तिस्थापन के छः वर्षों बाद भी मन्दिर निर्माण के कार्य का आरम्भ नहीं हो सका। इसका प्रधान कारण था आर्थिक अभाव। इसी समय (१९३४) अप्रत्याशित रूप से प्रोभिडेन्स वेदान्त सेन्टर, अमेरिका के अध्यक्ष स्वामी अखिलानन्द जी की दो शिष्याओं ने मन्दिर निर्माण हेतु बहुत बड़ी रकम (करीब साढ़े छः लाख रुपये) देने का वचन दिया। ये भक्तिमती शिष्याएँ थीं—मिस हेलेन रूबेल ('भक्ति') एवं मिसेज अन्ना ओसंटर। इस महादान के फलस्वरूप मन्दिर-निर्माण की सबसे बड़ी बाधा दूर हो गयी। अतः मन्दिर निर्माण का कार्य आरम्भ किया गया। १९३५ ई० को श्री श्री माँ के जन्मदिन के शुभ अवसर पर साधु-ब्रह्मचारियों ने सर्वप्रथम बुनियाद के लिए मिट्टी काटकर मन्दिर-निर्माण कार्य का शुभारम्भ किया। इसी वर्ष १० मार्च को श्री रामकृष्णदेव की जन्मतिथिपूजा के साधारण उत्सव (Public celebration) के दिन से मार्टिन एण्ड बर्न कम्पनी के द्वारा मन्दिर निर्माण का कार्य शुरू किया गया। इसी वर्ष १६ जुलाई को विज्ञान महाराज ने पुनर्भित्तिस्थापन किया था। सबों की, खासकर विज्ञान महाराज की, हार्दिक इच्छा थी कि मन्दिर निर्माण का कार्य शीघ्र पूरा हो जाय, परन्तु विविध कारणों से ऐसा संभव नहीं हो सका। इसे पूरा होने में करीब चार वर्ष लग गये। १४ जनवरी १९३८ ई० को गर्भ मन्दिर का कार्य पूरा हो गया तथा नाट्य मंदिर का कुछ कार्य बाकी था जो बाद में पूरा हुआ। करीब ३३,००० वर्गफुट के क्षेत्रफल पर बना यह विशाल मंदिर चुनार पत्थर, श्वेत संगमरमर, काला पत्थर, इस्पात की छड़ एवं कंक्रीट से बनाया गया है। मंदिर निर्माण में करीब आठ लाख रुपयों का खर्च हुआ जबकि पूर्वानुमान करीब छः लाख रुपयों का था।

मन्दिर प्रतिष्ठा : १९३८ ई० की १४वीं जनवरी (शुक्रवार, मकर संक्रान्ति) रामकृष्ण संघ के इतिहास में विशेष स्मरणीय दिन है। इसी दिन स्वामी विवेकानन्द का एक बहुत बड़ा स्वप्न साकार हुआ। संघ के प्रधान केन्द्र में श्री रामकृष्ण मंदिर एवं इसके भीतर भगवान श्री रामकृष्णदेव की मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई। सिर्फ रामकृष्ण संघ ही क्यों, विश्व इतिहास में भी उस दिन का विशेष महत्त्व है। स्वामी विवेकानन्द की ऐसी मान्यता थी कि समग्र पृथ्वी की संस्कृति एवं धर्म के नवजागरण में यह मंदिर गुरुत्वपूर्ण भूमिका ग्रहण करेगा। यह मान्यता आज सत्य प्रमाणित हो रही है।

प्रातः काल पुराने मंदिर से शोभायात्रा के साथ 'आत्माराम का पात्र' (जिसमें भगवान श्री रामकृष्णदेव की पवित्र भस्मास्थि थी, स्वामीजी इसे 'आत्माराम का पात्र' कहते थे।) नये मंदिर में लाकर प्रतिष्ठित किया गया। मंदिर प्रतिष्ठा का यह शुभ कार्य स्वामी विज्ञानानन्दजी ने अपने कर-कमलों से किया। उस समय वे रामकृष्ण मठ एवं मिशन के महाध्यक्ष पद पर आसीन थे। मंदिर प्रतिष्ठा करने के कुछ देर पहले विज्ञान महाराज ने कहा, "मंदिर में ठाकुर की प्रतिष्ठा

करके कहूँगा, 'स्वामीजी, आपके द्वारा प्रतिष्ठित ठाकुर आपके ही परिकल्पित मंदिर में बैठे हैं। आप ने कहा था —'ऊपर से देखूँगा।' इसीलिए देखिए, ठाकुर नव-मन्दिर में आज बैठे हैं। और भी एक बात ठाकुर से कहूँगा।''[8]

मन्दिर प्रतिष्ठा के बाद सेवक ने महाराज से पूछा, ''आप बोले थे, 'ठाकुर एवं स्वामीजी से कुछ कहूँगा।' वह आपने कहा क्या?'' महाराज बोले, ''हाँ, मैंने कहा है। स्वामीजी को कहा, 'स्वामी जी! आपने कहा था कि आप ऊपर से देखेंगे। अब देखिए आपके ही द्वारा प्रतिष्ठित ठाकुर आज आपके ही द्वारा परिकल्पित मंदिर में बैठे हैं।' उस समय मैंने स्पष्ट देखा—स्वामी जी, राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द), महापुरुष महाराज, शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द), हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द), गंगाधर महाराज (स्वामी अखंडानन्द) आदि खड़े होकर देख रहे हैं।'' (अँगुली से दक्षिण-पश्चिम कोने की ओर महाराज ने इशारा किया)[9]

उस दिन विज्ञान महाराज ने और भी कहा था, ''अब मेरा कार्य समाप्त हो गया। स्वामीजी मेरे ऊपर जिस कार्य का दायित्व सौंपे थे वह दायित्व आज मेरे सिर से उतर गया। ·······स्वामीजी ने कहा था— 'पेसन,' तुमको ही मंदिर का कार्य करना होगा। आज स्वामीजी की इच्छा से इस मंदिर की प्रतिष्ठा हो गयी। स्वामीजी सूक्ष्मदेह से इस मंदिर को देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए हैं। मेरा भी कार्य समाप्त हो गया।''[10].

यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य है: स्वामीजी ने विज्ञानानन्दजी से कहा था, ''तुम्हें ही इस मंदिर का कार्य करना होगा।'' वास्तव में भी मंदिर परिकल्पना से लेकर मंदिर-प्रतिष्ठा तक दीर्घ चालीस वर्षों तक मंदिर संबंधी प्रत्येक गुरुत्वपूर्ण घटना के साथ वे युक्त थे। भावी मंदिर की परिकल्पना के संबंध में स्वामीजी ने उनके ही साथ विवेचना की थी तथा उनसे ही मंदिर का नक्शा बनवाया था। महापुरुष महाराज ने सर्वप्रथम भित्तिस्थापन किया था, परंतु यथार्थ भित्ति-स्थापन बाद में विज्ञान महाराज ने ही किया। उस समय स्वामी अखंडानन्द जी महाराज संघ के महाध्यक्ष थे। रीति के अनुसार उन्हें ही भित्तिस्थापन का कार्य करना था। किन्तु यह कार्य स्वामी विज्ञानानन्दजी को ही करना पड़ा था। अंत में मंदिर-प्रतिष्ठा भी उनके ही हाथों हुई। तथा आश्चर्य का विषय यह है कि मंदिर-प्रतिष्ठा के कुछ दिनों बाद ही (२५ अप्रैल १९३८) वे महासमाधि में लीन हो गये। मानो मंदिर प्रतिष्ठा के लिए ही वे देह धारण किये हुए थे।

मंदिर प्रतिष्ठा के दिन मठ एक बहुत बड़े उत्सव क्षेत्र में बदल गया था। दिन भर संकीर्तन, भजन एवं मातृ संगीत से मठभूमि मुखरित हो उठी थी। अनवरत पूजा, पाठ एवं होमादि के कारण एक नये परिवेश की सृष्टि हो गयी थी। उस दिन करीव एक लाख लोगों का समागम हुआ था जिसमें से प्रायः बारह हजार लोगों ने बैठकर प्रसाद ग्रहण किया। संघ के विभिन्न केन्द्रों से करीब दो सौ साधु-ब्रह्मचारियों एवं देश के विभिन्न भागों से अनेक भक्तों का आगमन हुआ था। अमेरिका से आये थे स्वामी अखिलानन्द एवं उनकी दानशील दो शिष्याएँ मिस हेलेन रूबेल तथा मिसेज अन्ना ओर्सटर

इस प्रकार प्राच्य और पाश्चात्य की संस्कृति एवं धर्मभाव की मिलनभूमि श्री रामकृष्ण मन्दिर प्रतिष्ठित हो गया तथा इसके अन्दर 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' चिर काल के लिए भगवान श्री रामकृष्णदेव विराजमान हो गये।

मन्दिर दर्शन: भगवान श्री रामकृष्ण समन्वय मूर्ति थे। विभिन्न भावों एवं धर्मों का उन्होंने अपने जीवन एवं उपदेश के माध्यम से अपूर्व समन्वय किया था। स्वामी विवेकानन्द ने उनके इसी समन्वय भाव को संसारभर में प्रचारित किया था तथा वे श्री रामकृष्णदेव के इस समन्वय भाव को उनके मन्दिर में भी प्रस्फुटित

करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि श्री रामकृष्ण मन्दिर सिर्फ धर्मभाव ही नहीं, शिल्प-संस्कृतियों की भी समन्वय भूमि हो। अतः वे चाहते थे कि इस मन्दिर में भारतवर्ष की विभिन्न शिल्प-शैलियों का एकत्र समावेश हो, साथ-साथ पाश्चात्य शिल्प-शैलियों का भी यहाँ अनुकरण हो ताकि प्राच्य एवं पाश्चात्य के स्थापत्यों के मिलन से एक अपूर्व नवीन शिल्प-कर्म का निर्माण हो जाय। स्वामी विज्ञानानन्द जी द्वारा प्रतिष्ठित बेलुड़ मठ के श्री रामकृष्ण मन्दिर में स्वामीजी की इन कल्पनाओं को मूर्त्त रूप देने की यथासंभव चेष्टा की गयी है। आइए, इस अनुपम मन्दिर का हम पुण्य-दर्शन करें।

मन्दिर के मुख्य तीन भाग हैं—गर्भमन्दिर, नाट्य-मन्दिर (प्रार्थनागृह) तथा गोपुरम् (प्रवेश द्वार)। नाट्यमन्दिर एक ओर गर्भमन्दिर से तो दूसरी ओर गोपुरम् के साथ संयुक्त है। साधारणतः हिन्दू मन्दिरों में गर्भमन्दिर तथा नाट्यमन्दिर एक साथ जुड़े नहीं होते परन्तु यहाँ, चर्च की तरह, दोनों एक साथ जुड़े हैं। गोपुरम् दक्षिण भारत के मन्दिरों में होते हैं परन्तु वे गर्भमन्दिर से दूर होते हैं। परन्तु यहाँ गोपुरम् मन्दिर के साथ संलग्न है। मन्दिर का बुनियादी खाका (foundation plan) देखने पर वह ईसाइयों के पवित्र क्रूस के आकार का लगता है। पूरे मन्दिर की लम्बाई २३५ फुट, चौड़ाई १४० फुट तथा महत्तम ऊँचाई ११२ फुट है।

गोपुरम् : मन्दिर के दक्षिणी भाग में नाट्यमन्दिर के साथ संलग्न ७८ फुट ऊँचा गोपुरम् है। गोपुरम् के प्रवेश द्वार के दोनों ओर युग्मस्तम्भ है। स्तम्भों के ऊपर एक बड़ा सा मेहराब (Arch) है जिसके मध्य में रामकृष्ण संघ का प्रतीक-चिह्न बना हुआ है। यह वृहदाकार प्रतीक मंदिर में प्रवेश करने वाले सभी दर्शनार्थियों का ध्यान सर्वप्रथम आकर्षित करता है। स्वामीजी द्वारा परिकल्पित यह प्रतीक सिर्फ कर्म, ज्ञान, भक्ति एवं योग का ही समन्वय सूचित नहीं करता है, बल्कि प्राच्य एवं पाश्चात्य, धर्म एवं विज्ञान, इहलोक एवं परलोक का भी संयोग सूचित करता है। और इसी समन्वय एवं संयोग के साकार प्रकाश हैं श्रीरामकृष्णदेव। अतएव यह प्रतीक हुआ श्री रामकृष्ण दर्शन का चित्र-सूत्र। फिर प्रतीक खचित प्रवेश द्वार का अतिक्रमण कर जिस मन्दिर में हम प्रवेश करते हैं, वह है स्वामीजी के रामकृष्ण दर्शन का वाङ्मय स्थापत्य भाष्य। मेहराब के दोनों ओर पूर्णाकृति हाथी की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। हाथी अपनी सूँड़ के अग्रभाग द्वारा कमल के फूल को पकड़े हुए हैं। हिन्दुओं के अनुसार हाथी एवं कमल का फूल दोनों मंगलसूचक हैं। मन्दिर में अन्यत्र भी हाथी का मुँह एवं कमल का फूल दिखा हुआ है। गोपुरम् की निर्माण-शैली में अजन्ता एवं साँची का प्रभाव जैसा है; वैसा ही पश्चिम भारत के कोन्डने एवं नासिक की विख्यात बौद्ध गुफा के सम्मुखी भाग के स्थापत्य का प्रभाव है। प्रवेश द्वार के उभयवर्ती युग्मस्तम्भ एवं उसके ऊपरी भाग के साथ, साँची के विख्यात तोरण की सदृशता सहज में ही नजर आती है। प्रवेश द्वार के ऊपर वृत्ताकार अंश अजन्ता एवं एलोरा की शैली पर निर्मित है। गोपुरम् के शीर्ष पर तीन छत्रियाँ तथा चारों कोने पर चार गुम्बज हैं। छत्रियाँ राजपूत-मुगल शैली के अनुसार बनायी गयी हैं परन्तु आकृति से ये बंगाल के प्राचीन खर छप्परों की याद दिलाती हैं। बंगाल के मन्दिरों का भी भाव इनमें स्पष्ट है। गोपुरम् की खिड़कियाँ एवं झूले बरामदे (Cartilever Verandah) तथा उनका स्थापत्य मुगल-राजपूत शैली का संमिश्रण लगता है। फिर, भारतीय-अरबी (Irdo-Saracenic) शैली का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है।

नाट्यमन्दिर : गर्भमन्दिर से संलग्न १५२ फुट लम्बा ७२ फुट चौड़ा तथा ४८ फुट ऊँचा नाट्यमन्दिर है। इसमें प्रवेश करते ही हर व्यक्ति इसकी विशालता एवं सौन्दर्य को देखकर विस्मित हो जाता है। नाट्य-मन्दिर तीन भागों में विभक्त है—मध्यवर्ती विस्तृत

भाग एवं दोनों पार्श्ववर्ती संकीर्ण भाग। मध्यवर्ती भाग के दोनों ओर विशाल स्तम्भों की श्रेणियाँ हैं। इन स्तम्भों पर ग्रीस का प्रभाव जैसा है वैसा ही प्रभाव कारला एवं कोन्डने की विख्यात प्राचीन बौद्ध गुफा का भी है। फिर दक्षिण भारत के हिन्दू मन्दिरों (जैसे मदुराई का मीनाक्षी मन्दिर) में जो स्तम्भ श्रेणियाँ हैं, उनके भी स्थापत्य का प्रभाव यहाँ देखने में आता है। इसके साथ ही स्तम्भों में आधुनिक स्थापत्यों का भी समावेश है। नाट्यमन्दिर की छत भीतर से हाथी की पीठ की तरह धनुषाकार दिखाई पड़ती है। यह भी कारला एवं कोन्डने की बौद्ध गुफा के अभ्यन्तर का स्मरण दिलाता है। नाट्यमन्दिर के अन्दर ऊपरी भाग में चारों ओर झूले बरामदे हैं। इन बरामदों एवं नाट्यमन्दिर की खिड़कियों पर उत्तर-भारतीय, विशेषत: राजपूत एवं मुगल स्थापत्य शैली एवं भारतीय-अरबी शैली का प्रभाव स्पष्ट है। श्री रामकृष्णदेव के लीला-पार्षदों एवं अन्य धर्माचार्यों की प्रतिकृति रखने के लिए नाट्यमन्दिर की दीवारों में बड़े-बड़े ताखें बने हुए हैं। नाट्यमंदिर के मध्य में पूर्व एवं पश्चिम दिशा की ओर दो और प्रवेश द्वार हैं जिनके ऊपर क्रमश: गणेश जी एवं महावीर जी की मूर्तियाँ स्थापित की गयी हैं। ये प्रवेश द्वार राजस्थानी शैली पर निर्मित हैं। नाट्य-मंदिर में करीब एक हजार लोगों के बैठने की जगह है।

गर्भमन्दिर : प्राचीन हिन्दू मन्दिरों के गर्भगृह अत्यन्त संकीर्ण एवं अंधकारमय होते हैं। परन्तु इस मंदिर का गर्भगृह प्रशस्त एवं खुला है, ताकि पर्याप्त हवा एवं प्रकाश आ जा सके। गर्भमन्दिर की ऊपरी भाग में वृहद जालियाँ बनायी गयी हैं। जालियों को पंख फैलाए मयूर की आकृति दी गयी है, जिससे इनकी सुन्दरता बहुत बढ़ गयी है। इन जालियों में राजपूत एवं मुगल शैली का प्रभाव है। गर्भमन्दिर के चारों ओर प्रशस्त परिक्रमा बरामदा है। इसके साथ वृत-खंडाकार बरामदा (तीन ओर) संलग्न है जिसपर आधुनिक भारतीय-यूरोपीय वास्तुशिल्प कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल के खंडाकार बरामदे का भाव है। साथ ही बौद्ध तथा चर्च का भी प्रभाव इसपर है। परिक्रमा पथ अंग होने के कारण यहाँ यह श्री मंदिर की शोभा रहा है। वृत-खंडाकार बरामदों की बाहरी दीवार जालियों के बीच नवग्रह की मूर्तियाँ प्रख्यात शिल्पी नन्दलाल बसु द्वारा चित्रित की गयी थीं। उड़ीसा भुवनेश्वर, कोणार्क आदि मंदिरों में नवग्रह की मूर्ति देखने में आती है। गर्भ मन्दिर में कुल नौ गुम्बज इसीलिए इस मंदिर को नवरत्न मन्दिर भी कहते दक्षिणेश्वर का काली मन्दिर भी नवरत्न मन्दिर मुख्य गुम्बज के चारों कोने पर चार गुम्बज हैं त बाकी और चार गुम्बज गर्भमन्दिर के चारों कोने पर हैं मुख्य गुम्बज के निकटवर्ती गुम्बजों के बीच का स्था छत्री देकर पूर्ण किया गया है। ये छत्रियाँ राजपू शैली पर निर्मित होने के बावजूद इन्हें कामारपुकु (बंगाल) स्थित श्री रामकृष्णदेव के पैतृकगृह का आका दिया गया है। गुम्बज एवं छत्रियाँ जिस प्रकार आपस में सम्बद्ध किये गये हैं उससे राजपुताना एवं गुजरात के जैन मंदिर का प्रभाव दिखाइ पड़ता है। छोटे गुम्बजों के कारनिस के नीचे ब्रैकेट देने से मंदिर के सौंदर्य में वृद्धि हुई है। ऐसा राजपुताना, वाराणसी आदि स्थानों के स्थापत्यों में देखा जाता है। मुख्य गुम्बज से सटे गुम्बजों के आधार पर पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर दिशा में दो-दो वेदियाँ बनी हुई हैं जिनपर छ: ऋतुओं की शास्त्रसम्मत मूर्तियां स्थापित करने का प्रावधान है। गुम्बज मूलत: इसलामी स्थापत्य का अंग है। मसजिदों का चूड़ा गुम्बज से शोभित होता है। परन्तु वह प्राय: गोलाकार होता है। श्री रामकृष्ण मंदिर भी गुम्बजों से सुशोभित है परंतु ये गुम्बज पूर्णत: गोलाकार नहीं है। गुम्बज-स्थापत्य के क्षेत्र में राज-पुताना में जो विकास हुआ है उसका प्रभाव श्री रामकृष्ण मंदिर में है। परन्तु राजपुताना के गुम्बजों की तरह इस मन्दिर के गुम्बजों को समतल नहीं बनाकर इनके ऊपर गुटिका एवं रोल बनाया

गया है। दक्षिण भारत के मंदिरों में इस प्रकार का शिल्प देखा जाता है। भुवनेश्वर के लिंगराज मंदिर के स्थापत्य का भी प्रभाव श्री रामकृष्ण मंदिर के गुम्बज के गठन में है। गुम्बज के शीर्ष भाग पर एक महापद्म (इसे आमलकी भी कहते हैं) तथा इसके ऊपर एक लघुपद्म बनाया गया है। सबसे ऊपर ताम्र कलश बैठाया गया है। मुख्य गुम्बज के शीर्ष पर ताम्र कलश के नीचे प्रकाश-बत्ती की व्यवस्था है। रात के समय प्रकाशबत्ती आकाश में उगे चन्द्रमा की तरह प्रतीत होती है। इसके प्रकाश को रात्रि में बहुत दूर से ही देखा जा सकता है। केवल उत्सवों के दिन यह जलाया जाता है।

वेदी :—गर्भ मन्दिर के भीतर डमरू-आकृति की वेदी संगमरमर पत्थर से बनी हुई है। यह वेदी शिल्पाचार्य नन्दलाल बसु के निर्देशानुसार निर्मित हुई है। डमरू के साथ भगवान शिव का संबंध पुराण प्रसिद्ध है। कामारपुकुर में योगियों के शिव मन्दिर के लिंगदेह से निकली ज्योति चन्द्रमणि देवी के अन्दर प्रवेश करने से श्री रामकृष्णदेव का जन्म हुआ था। अतएव 'डमरू आकृति' वेदी श्री रामकृष्णदेव की शिव सत्ता का प्रतीक है। वेदी पर तीन ओर ब्राह्मी हंस चित्रित हैं। ब्राह्मी हंस परमात्मा का प्रतीक है। वेदी के ऊपर जिनका विग्रह है, वे ही परमात्मा हैं जो नरदेह में मर्त्यलोक में आविर्भूत हुए हैं। वेदी के अन्दर श्री रामकृष्णदेव की भस्मास्थि सुरक्षित है। वेदी के ऊपर एक वृहद् पद्म बनाया हुआ है जिसके ऊपर श्री रामकृष्णदेव की मनोहारी मूर्ति सुशोभित है। पद्म भगवान विष्णु अपने हाथ में धारण किये हुए हैं। अतः हो सकता है कि रामकृष्णरूपी विष्णु के आविर्भाव का स्मरण दिलाने के लिए श्री ठाकुर की मूर्ति पद्म के ऊपर स्थापित की गयी हो। यह मूर्ति इटालियन संगमरमर से विख्यात भास्कर गोपेश्वरपाल ने निर्मित किया है। मूर्ति के ऊपर चन्द्रातप (मण्डप, एवं पीछे का परदा सीधा-सादा आडम्बरहीन बनाया गया हैं, जैसा कि श्री रामकृष्ण स्वयं थे। चन्द्रातप के सम्मुखी भाग पर ओंकार है। गर्भ मन्दिर की दीवारों में अनेक ताखे हैं। इनमें से एक में श्री श्री माँ का चरणरज तथा अन्य एक में वार्णलिंग शिव रखा हुआ है। श्री रामकृष्ण द्वारा व्यवहृत वस्तुएँ तथा उनकी त्यागी संतानों की भस्मास्थियाँ गर्भमन्दिर के ऊपर द्वितीय मंजिल के एक कमरे में सुरक्षित हैं। अधिकांश भारतीय मन्दिरों में विग्रह की शयनशय्या गर्भमन्दिर में ही रहती है। परन्तु यहाँ शयनगृह गर्भमन्दिर के ऊपर तीसरी मंजिल पर है।

मन्दिर में विभिन्न शिल्प शैलियों का समावेश करते समय किसी भी स्थापत्य का पूरा-पूरा अनुकरण नहीं किया गया है। उनका कुछ अंश ग्रहण किया गया है तो कुछ अंश ग्रहण नहीं किया गया है। साथ ही उसमें नया भाव, नया छन्द, नयी मात्रा का योग किया गया है। इसके फलस्वरूप, ऐसा नहीं लगता है कि इसमें विभिन्न शिल्प-शैलियों का सम्मिश्रण है। बल्कि सभी शिल्प शैलियों को आत्मसात् करके एक अद्वितीय तथा अभिनव स्थापत्य का प्रादुर्भाव हुआ है जिससे वर्तमान युग के मन्दिर स्थापत्य में एक युगान्तरकारी परिवर्तन एवं शिल्प नवजागरण के क्षेत्र में एक नयी दिशा उन्मोचित हुई है।'[11]

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार वर्तमान युग का धर्मकेन्द्र होगा बेलुड़ मठ एवं उसका श्री रामकृष्ण मंदिर। यह मंदिर होगा, महासंयोग का सूतिकागृह, महासमन्वय का पीठ स्थान। स्वामीजी ने कहा था, "जो मठ हम यहाँ बनाते हैं उसमें सभी मतों और भावों का सामंजस्य रहेगा। श्री गुरुदेव का जो उदार मत था, उसी का यह केन्द्र होगा। विश्व समन्वय की जो किरण यहाँ से प्रकाशित होगी, उससे सारा जगत उद्भासित हो जायगा।"[12] उन्होंने और भी कहा था, "यहाँ से जिस शक्ति की उत्पत्ति होगी वह पृथ्वी भर में फैल जायगी और वह मनुष्य की जीवन की गति को परिवर्तित कर देगी। ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म के समन्वय स्वरूप मानव के लिए हितकर आदर्श यहाँ से प्रसृत होंगे। इस

मठ के पुरुषों के इशारे पर एक समय दिग्दिगन्त में प्राण का संचार होगा।"[13]

भविष्य द्रष्ट-ऋषि स्वामी विवेकानन्द की उपर्युक्त भविष्य वाणी आज अक्षरशः सत्य सिद्ध हो रही है। भगवान श्री रामकृष्णदेव के लीलापार्षद स्वामी प्रेमानन्द को एक अपूर्व दर्शन हुआ था। 'वे एकदिन स्वामीजी के मन्दिर के पास खड़े थे। उसी समय उन्होंने देखा कि काल वैशाखी की तरह जोरों से आँधी-तूफान तथा वर्षा आयी है। बिजली भी चमक रही है। इतनी जोरों से बारिस हो रही है कि पास में खड़ा व्यक्ति भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। कुछ क्षणों बाद वर्षा रुक जाने पर उन्होंने देखा कि श्री रामकृष्ण मन्दिर (पुरातन) से एक ज्योति निकलकर सम्पूर्ण जगत को पूर्णतया उद्भासित कर दिया'।[14] जब सम्पूर्ण जगत में अधर्म के काले बादल छा गये थे; भौतिकवाद की चकाचौंध में लो[ग] आत्म-विस्मृत हो गये थे, उसी समय श्री रामकृष्ण रू[पी] महाज्योति ने इस अधर्मरूपी काले बादल को दूर क[र] मानव जाति में आत्मचेतना की ज्योति जलायी। आ[ज] भी वह महाज्योति रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा [के] रूप में दिग-दिगन्त में प्राणों का संचार, समस्त प्राणिय[ों] को आशा का संचार, तथा आत्मविस्मृतों में आत्मचेतन[ा] का संचार कर रही है और इसका केन्द्र है बेलुड़मठ क[ा] श्री रामकृष्ण मन्दिर। आइए, इस मन्दिर के जाग्रत देव से हम सभी एक स्वर से प्रार्थना करें।

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय॥
मृत्योर्माऽमृतं गमय॥॥

---

१. श्री रामकृष्ण भक्तमालिका, द्वि० भा०, पृ०-१२२-२३
२. विवेकानन्द साहित्य, षष्ठ खंड (१९६२), पृ. १७३-७४
३. उद्बोधन (बंगला मासिक), ज्येष्ठ १३३६, पृ०-२६६-६७
४. दिव्य प्रसंग, द्वि० सं०—पृ०-४७
५. वही पृ०-११८
६. प्रत्यक्षदर्शीर स्मृति पटे स्वामी विज्ञानानन्द पृ०-१६८
७. दिव्य प्रसंग, द्वि० सं०, पृ० ११७
८. दिव्य प्रसंग, द्वि० सं०, पृ०—१५५
९. दिव्य प्रसंग, द्वि० सं०—पृ०-१५६
१०. उद्बोधन, ज्येष्ठ, बंगाब्द-१३४५, पृ०-२६३
११. श्री रामकृष्ण भक्तमालिका, भाग-२, पृ०-१२४
१२. मन्दिर स्थापत्य संबंधी अधिकांश विवरण स्वाम[ी] पूर्णात्मानन्द जी द्वारा लिखित प्रबन्ध 'बेलुड़ मठे[र] श्री रामकृष्ण मन्दिर' से साभार संग्रहीत।
१३. वि. सा., ष. खं., पृ०-८० (प्रथम संस्करण)
१४. वही, पृ०-१२०
१५. श्री रामकृष्ण ओ योगोद्यान, पृ०-५

बेलुड़ मठ : अतीत के आइने में

—स्वामी सोमेश्वरानन्द
रामकृष्ण मिशन, बम्बई

प्रस्तुत निबन्ध 'Early days of Belur Math' नामक अंग्रेजी लेख का हिन्दी रूपान्तर है। यह रूपान्तर अद्वैत आश्रम, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'A Bridge to Eternity' से साभार किया गया है। अनुवादक हैं रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ मठ के अन्तेवासी ब्रह्मचारी रामेश्वर—सं०)

नब्बे वर्ष पहले, गृहत्यागी युवकों के एक दल ने गंगा के पश्चिमी तट पर एक छोटे से ग्राम में स्थायी मठ के लिए एक भूमिखण्ड प्राप्त किया। वह भूमिखण्ड एकांत, जंगली, दलदल तथा मलेरिया से आक्रांत था। वहाँ विद्युत, गैस अथवा पेयजल की कोई व्यवस्था नहीं थी। नदी मार्ग के अतिरिक्त उस स्थान तक पहुँचने का एक ही मार्ग था और वह भी खाइयों से भरा-पड़ा था।

कलकत्ता कुछ ही मील दूर था, फिर भी, दिन में भी लोग वहाँ आने से डरते थे। जंगली झाड़ियों एवं वृक्षों से भरा वह भूमिखण्ड सियारों तथा अपराधियों के छिपने का स्थान था। कहीं-कहीं गरीब ग्रामीणों की झोपड़ियाँ थीं।

उन दिनों का वह अज्ञात गाँव-- बेलुड़ आज विविध गतिविधियों से भरा एक अन्तर्राष्ट्रीय तीर्थ स्थल बन चुका है। संसारभर से लाखों लोग यहाँ आते हैं, यहाँ के अधिष्ठाता देवता के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं तथा मानसिक शांति प्राप्तकर अपने आपको धन्य समझते हुए प्रत्यागमन करते हैं। विशेष बसें देश-विदेश के सैकड़ों पर्यटकों को प्रतिदिन यहाँ लाती हैं। पाँच-पाँच बस मार्ग तथ एक स्टीमर मार्ग इस गाँव के साथ युक्त हो चुका है। तीस से अधिक स्थानीय विद्युत रेलगाड़ियाँ प्रतिदिन रुकती हैं। अभी तो यहाँ हेलिकाप्टर उतरने की भी सुविधा उपलब्ध है।

अब यहाँ जंगल नहीं रहे। इस गाँव में अब हजारों लोग वास करते हैं। यद्यपि अभी भी यहाँ शृगालों का वास है, परन्तु अपराधियों का लोप हो गया है। पहले का दृश्य पूर्णतया परिवर्तित हो चुका है। कई कल-कारखानों के अतिरिक्त, तीन महाविद्यालय एक दर्जन विद्यालय, दो अभियंत्रण संस्थान तथा अन्य कई शैक्षणिक संस्थान यहाँ खुल चुके हैं।

साधुओं द्वारा प्राप्त वह छोटा सा भूमिखण्ड आज बेलुड़ मठ के नाम से विख्यात है। यह रामकृष्ण मठ एवं मिशन का प्रधान केन्द्र है, जिसकी ११८ शाखाएँ विश्वभर में फैली हुई हैं। (अब १२५ शाखाएँ हैं—सं०) यह कायापलट कैसे हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर 'रामकृष्ण मठ एवं मिशन का इतिहास' सहित अन्य कई पुस्तकों में पाया जा सकता है। परन्तु उन प्रारंभिक दिनों की चित्ताकर्षक कहानी मठ में जीवन-अवस्था, मठ वासियों की दिनचर्या, श्री रामकृष्ण के महान शिष्यों का अवस्थान, उनके द्वारा नवागत साधुओं का प्रशिक्षण तथा इस तरह के अन्य कई विवरण विस्तार से लिपिबद्ध नहीं हुए हैं। यहाँ हम प्रारम्भिक दिनों की इन्हीं अन्तर्कथाओं को प्रस्तुत करना चाहते हैं। प्रारंभिक दिनों से हमारा तात्पर्य प्रथम चार वर्षों (मार्च १८९८ से लेकर जुलाई १९०२ तक) से है। यद्यपि सभी प्रकाशित पुस्तकों की, कुछ दुर्लभ पुस्तकों की भी, सहायता ली गयी है, फिर भी प्रस्तुत लेख मूलतः कई अप्रकाशित सामग्रियों पर, विशेषत: उन दिनों के

साधुओं के द्वारा लिखित दैनन्दिनी पर आधारित है।

जमीन की खरीद :

पाश्चात्य देशों से भारत प्रत्यावर्तन करने के शीघ्र बाद स्वामी विवेकानन्द ने स्वामी निरंजनानन्द एवं स्वामी विज्ञानानन्द (ब्र० हरिप्रसन्न) को गंगा के पूर्व तट पर एक भूमिखण्ड खोजने के लिए कहा। उन दोनों ने कई भूमिखण्डों को देखा, परन्तु वे स्थान या तो बहुत छोटे थे या बहुत ही मँहगे थे। एकदिन वे लोग गंगा के पश्चिम-तट के नजदीक से होकर नौका द्वारा उत्तर दिशा की ओर जा रहे थे तो, उन्हे जंगलों से ढका एक भूमिखण्ड दिखाई दिया। उस पर एक छोटा सा एक मंजिला मकान भी था। पास में ही एक नाली थी, जहाँ वृक्षों के सहारे नौकाएँ एवं जलयान बँधे हुए थे। वहाँ उतरकर उन्होंने पहले किसी को नहीं देखा, परन्तु लकड़ी के तख्तों से बने एक गोदाम के पास आने पर उनकी भेंट एक सज्जन से हुई, जिन्होंने भूस्वामी का नाम एवं पता बताया तथा यह भी कहा कि मालिक जमीन बेच भी सकते हैं। वह जमीन पटना-निवासी श्री भागवत नारायण सिंह की थी। उनलोगों ने भूस्वामी से मिलकर जमीन खरीदने के लिए ठीक कर लिया।[1] ३ जनवरी १८९८ ई० को अग्रिम राशि के रूप में १००१ रुपये दिये गये[2] तथा अगले महीने की चौथी तारीख को ३८,९९९ रुपयों का भुगतान कर जमीन प्राप्त कर ली गयी। ५ मार्च १८९८ ई० को १२ बजे से १ बजे के बीच हावड़ा अनुबन्धन कार्यालय में स्वामी विवेकानन्द के नाम जमीन कराने के लिए करारनामा पेश किया गया।

बहुत छानबीन के बाद जिन दो भूमिखण्डों का चयन किया गया था, उसमें से यह एक था; दूसरा भूमिखण्ड दक्षिणेश्वर के उत्तर पानिहाटी में था। मिस मूलर ने बेलुड़ की जमीन के संबन्ध में आपत्ति उठायी थी क्योंकि यह असमतल एवं खाइयों से भरी-पड़ी थी। परन्तु, स्वामी विवेकानन्द ने पानिहाटी की जमीन को पसन्द नहीं किया, क्योंकि वह भूमिखण्ड कलकत्ता से बहुत दूर था, अतएव भक्तों को वहाँ जाने-आने में बहुत ही असुविधा होती। चूंकि और कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिला, इसीलिए बेलुड़ की ही जमीन का चयन अंतिम रूप से किया गया।

जमीन की प्रकृति :

खरीदी गयी जमीन का क्षेत्रफल सात एकड़ था। दक्षिण तथा उत्तर दिशा में दो प्रवेश द्वार थे। दक्षिण फाटक काठगोला लेन (अभी शरत आटा लेन) तथा उत्तरी फाटक हेम पाल लेन की ओर खुलता था। इस जमीन उत्तर के में हरिधान दत्त का उद्यानगृह तथा श्री शंभु चन्द्र पाल की जमीन थी (हरिधान दत्त की जमीन परवर्ती काल में बेलुड़ मठ के द्वारा खरीद ली गयी एवं उद्यानगृह 'लेगेट हाउस' के नाम से जाना जाने लगा); दक्षिण में कुमार शरीश चन्द्र सिंह[4] तथा उपर्युक्त विक्रेता[5] की जमीन थी; पश्चिम में आम सड़क तथा गुलाम अशरफ, महेन्द्र लाल दास एवं बेनी माधव विश्वास[6] की जमीन थी; पूर्व में गंगा नदी थी।

यद्यपि नयी जमीन पर एक मकान था, फिर भी वह स्थान रहने लायक नहीं था। जमीन का एकांश नौकाओं एवं जलयानों की मरम्मत हेतु होर मिलर कम्पनी[7] के गोदी-वाड़े (Dock yard) के रूप में व्यवहृत होता था। स्वामी जी के मन्दिर तथा श्री श्रीमाँ के मन्दिर के बीच वाला भाग इस उद्देश्य के लिए प्रयुक्त होता था। नौकाओं एवं जलयानों को बाँधने से काम में लाये जाने वाले देवदार के तीन वृक्ष अभी भी वहाँ मौजूद हैं।

जमीन का एकांश ईंट की दीवारों से घिरा तथा वृक्षों से भरा हुआ था। जमीन के अन्दर तीन छोटे-छोटे तालाब एवं एक छोटा सा कुआँ था। 'गोलपुकुर'[8] नामक तालाब के दक्षिणी प्रान्त में केले के कई पेड़ थे। जमीन खरीदने के पहले, एक दिन जब श्री श्रीमाँ नौका द्वारा इस जमीन के पास से गुजर रही थीं तो उन्हें केले के बगीचे के निकट श्रीरामकृष्ण का दर्शन हुआ। वह स्थान वर्तमान के मिशन ऑफिस के दक्षिण-पूर्व में

था। उक्त तालाब के चारों ओर ताड़ के पेड़ थे, उनमें से कुछ पेड़ अभी भी मिशन ऑफिस के पूर्व देखे जा सकते हैं। ये पेड़ तालाब के क्षेत्रफल को इंगित करते हैं। 'पद्मपुकुर' नामक दूसरा तालाब, अभी जो जूता रखने का घर है, उसके उत्तर में था। यह तालाब कमल-फूल से भरा था।[10] परवर्ती काल में ये फूल मन्दिर में चढ़ाये जाते थे। तालाब के चारों ओर कुछ वृक्ष थे। इनमें से आम के दो पेड़ अभी भी श्रीरामकृष्ण मन्दिर के पश्चिमी रास्ते के किनारे देखे जा सकते हैं। 'पचापुकुर'[11] नामक तीसरा तालाब श्रीरामकृष्ण मन्दिर के पश्चिमी भाग में काँटेदार तार के बाड़े के नजदीक था।

स्वामीजी के मन्दिर के निकट एक विल्व-वृक्ष था। अभी का विल्व-वृक्ष उसी स्थान पर बाद में लगाया गया है। विल्व-वृक्ष के दक्षिणी भाग[12] में और भी कई वृक्ष थे। दरअसल, वह भू-भाग जंगल ही था। दूसरा उल्लेखनीय बिल्व-वृक्ष श्रीरामकृष्ण मन्दिर के पूर्व में था। इन दिनों रामकृष्ण जन्मोत्सव के जन उत्सव (Public celebration) के दिन प्रदर्शनी मण्डप में जहाँ श्रीरामकृष्ण का बड़ा सा चित्र रखा जाता है, वहीं पर वह बिल्व-वृक्ष था।

पचापुकुर के पूर्वी भाग में फलों के वृक्ष थे; जैसे आम, ताड़, नारियल इत्यादि। मठ-भवन के पास वाले प्रांगण में एक छोटा सा कुआँ था। वह कुआँ पुराने मंदिर के दक्षिण-पश्चिम कटहल के पेड़ के उत्तर में था। कुएँ के नजदीक ताड़, bryonia एवं कटहल का एक-एक वृक्ष था। आँगन में आम, गन्ध सफेदा (Eucalytus) आदि अनेक पेड़ थे। खरीदी गयी जमीन पर केवल दो ही मकान थे तथा दोनों एक मंजिला। बड़े मकान के उत्तरी भाग में दो कमरे, दक्षिणी भाग में एक कमरा तथा बीच में एक हॉल था। हॉल के साथ पूर्व की ओर एक बरामदा[13] संलग्न था। दूसरा मकान नौकरों के रहने के लिए था जिसमें छोटे-छोटे तीन कमरे थे। मुख्य फाटक के पास भी एक छोटा सा टूटा-फूटा घर था।[14]

जैसा कि पहले कहा गया है, ४ मार्च १८९८ ई० को भूखण्ड अधिकृत किया गया। इसी बीच मिस मैकलॉयड, मिसेज ओलि बुल तथा बाद में भगिनी निवेदिता (मिस मार्गरेट ई० नोबल) भारत पहुँच चुकी थीं तथा मिस मूलर के साथ रह रही थीं। पहली दो महिलाएँ मठ में आयीं तथा स्वामीजी की अनुमति पाकर नयी जमीन के बड़े मकान में रहने लगीं। कमरों का फर्श पक्का था। उनलोगों ने कमरों की सफेदी कराई एवं पुराने महोगनी फर्नीचरों की खरीद की। भगिनी निवेदिता दक्षिणी कमरे में रहती थीं, जबकि मिस मैकलॉयड एवं मिसेज बुल उत्तर-पूर्व के कमरे में रहती थीं। उत्तर-पश्चिमी कमरा, जो अभी स्वामी अभयानन्द जी का ऑफिस है, बैठकखाना (Drawing room) था। बैठकखाना का आधा भाग भारतीय रीति से तथा बाकी आधा भाग पाश्चात्य रीति[15] से सुसज्जित था। बीच का हॉल भोजन-कक्ष (Dinning Hall) के रूप में व्यवहृत होता था। वे लोग दो महीनों तक इस मकान में रही थीं, जबतक कि वे काश्मीर यात्रा के लिए न चल पड़ीं। (फरवरी १८९८ में) मठ आलम बाजार से नीलाम्बर मुखर्जी के उद्यान गृह में स्थानान्तरित हो गया था। यह उद्यान भवन नयी-मठ भूमि से केवल एक फर्लांग की दूरी पर था। स्वामीजी प्रतिदिन उस मकान तक आया करते थे, जहाँ उनकी अमेरिकन एवं अँग्रेज शिष्याएँ ठहरी हुई थीं। वे उनके साथ चाय पीते थे और भारत तथा विश्व-इतिहास एवं संस्कृति के सम्बन्ध में घण्टों चर्चा किया करते थे।[16]

निर्माणकार्य :

जमीन खरीदने के तुरत बाद स्वामीजी इसे स्थायी मठ के लिए तैयार करने को उत्सुक थे। जमीन को समतल करने, पुराने मकान का पुनर्निर्माण करने तथा मन्दिर-भवन का निर्माण करने का भार उन्होंने स्वामी विज्ञानानन्द (ब्रह्मचारी हरिप्रसन्न) तथा स्वामी अद्वैतानन्द के ऊपर सौंपा था। उन दिनों की याद

करते हुए स्वामी विज्ञानानन्दजी ने परवर्ती काल में कहा था :

"मठ के सामने (दक्षिण की ओर) जो बड़ा मैदान देखते हो, वहाँ गंगा के ज्वार का पानी आता था। इस मैदान में कई गड्ढे थे। होर मिलर कम्पनी का जहाज मरम्मत होता था। जमीन को खरीदने के पश्चात् इंट के भट्ठे से रोड़ी (rubble) लाकर गड्ढों को भरा गया था। जी० टी० रोड जंगलों से ढँका हुआ था। दिन के समय भी उस सड़क पर चलने से लोग डरते थे। सालकिया से लेकर श्रीरामपुर, कोन्नगर तक इन सब कार्यों के लिए मुझे जाना पड़ता था।"[17]

सबसे पहले मकान के सामने का प्राँगण समतल किया गया, क्योंकि वहाँ एक नये भवन का निर्माण करना था। १८९८ ई० के अप्रैल महीने में कार्यारम्भ हुआ।[18] इस बात को लेकर विचार-विमर्श चल रहा था कि वर्तमान मकान को तोड़कर नया मकान बनाया जाय या उसी के ऊपर दूसरी मंजिल बनायी जाय। अन्त में, स्वामी ब्रह्मानन्द ने एक विख्यात इंजीनियर से परामर्श लेने का निश्चय किया। १४ जुलाई को इंजिनियर आये तथा पुराने मकान का निरीक्षण करने के बाद उन्होंने कहा कि कुरसी (plinth) काफी मजबूत है, अतएव दोनों ओर दूसरी मंजिल बनायी जा सकती है।[19] प्राँगण के कुछ वृक्षों को काट गिराया गया। नये भवन की बुनियाद (foundation) काटने का कार्य आरम्भ हो गया एवं वर्तमान मकान के पुनर्निर्माण (remodelling) के लिए खाका (plan) तैयार किया गया। १२ नवम्बर १८९८, रविवार को श्री माँ मठ के निकटवर्ती नीलाम्बर मुखर्जी के उद्यान भवन में आयीं एवं वहाँ से श्री रामकृष्ण की पूजा करने के लिए नयी जमीन पर आयीं। परन्तु, किस स्थान पर उन्होंने श्री रामकृष्ण की पूजा की, यह अधिक लोग नहीं जानते हैं। वरिष्ठ साधुओं से हमें यह जानकारी मिली कि प्रथम दुर्गापूजा जिस स्थान पर हुई थी, उसी स्थान पर संभवतः श्री श्रीमाँ ने श्री रामकृष्ण देव की पूजा की थी। वह स्थान वर्तमान में स्वामी अभयानन्दजी के कार्यालय के ठीक पश्चिम (तथा पुराने मन्दिर के पूर्व में) है। लेखक को यह जानकारी सही मालूम पड़ती है, क्योंकि मन्दिर-भवन निर्माण का कार्य उसके पास ही चल रहा था।

दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना घटी ९ दिसम्बर १८९८ ई० को, जब स्वामीजी ने नयी जमीन पर मठ की प्रतिष्ठा की। वे आत्माराम की मंजूषा (जिसमें श्री रामकृष्णदेव की भस्मास्थि थी) को अपने कंधों पर रखकर शोभायात्रा के साथ यहाँ आये। वह कौन सा स्थान था जहाँ उन्होंने उनकी पूजा की? हमने पहले ही श्रीरामकृष्ण मन्दिर के पूर्वभाग में स्थित एक बिल्व-वृक्ष का उल्लेख किया है। स्वामीजी ने उसी बिल्व-वृक्ष के नीचे आत्माराम की मंजूषा को रखकर उनकी पूजा की।[20] पूजा के पश्चात होम भी किया गया। अतएव जन उत्सव के दिन प्रदर्शनी मण्डप में श्री रामकृष्णदेव की छवि उस स्थान पर रखी जाती है।

निर्माण कार्य तीव्र गति से चल रहा था। साधुओं के बैठने एवं ध्यान करने के लिए (स्वामीजी के मन्दिर के निकटवर्ती) बिल्ववृक्ष के चारों ओर एक चबूतरा बनाया गया। दक्षिणवर्ती मैदान के कई वृक्षों को काट डाला गया, क्योंकि वहाँ उत्सव मनाने का निश्चय किया गया था, परन्तु तालाब के चारों ओर के वृक्षों तथा गंगा के वृक्षों को नहीं काटा गया। मजदूरों के साथ साधुओं ने मशीन की तरह काम किया। मन्दिर-भवन केवल सात महीने में निर्मित हो गया तथा मठ-भवन एवं नौकर निवास (Servant's quarters) के पुनर्निर्माण का कार्य पाँच महीने से भी कम में पूरा हो गया। आठ महीने से कुछ अधिक समय (अप्रैल से दिसम्बर तक) में भवन-निर्माण एवं पुनरुद्धार का कार्य पूरा हो गया।[21] प्राँगण को समतल बनाया गया। आँगन को उस समय इंटों से मढ़ा नहीं गया था जैसा कि अभी है। अभी की अपेक्षा मठ की जमीन इन दिनों बहुत ही नीची थी। इसे कम से कम 3½ फुट ऊँचा किया गया।[22]

पुराने मकान में चार कमरे थे एवं पूर्व की ओर एक बरामदा था। स्वामी विज्ञानानन्दजी ने मध्यवर्ती हॉल को दो कमरों एवं एक गलियारे (passage) के रूप में विभक्त कर दिया। दक्षिण पश्चिम भाग के एक भाग में एक और कमरा बनाया गया। पश्चिमी बरामदा एवं अन्य एक छोटा सा कमरा मकान के साथ जोड़ा गया। उत्तरी भाग में नाले के पास एक छोटा पेशाबघर बनाया गया। दूसरी मंजिल पर जाने के लिए लकड़ी के तख्तों से एक सीढ़ी बनायी गयी। ऊपरी मंजिल, जो पूर्णतः नयी बनायी गयी थी, में पाँच कमरे थे, जबकि उतरी भाग में खुली छत रखी गयी थी। इसके उत्तर एक शौचघर बनाया गया था। गंगा की ओर एक प्रशस्त बरामदा संलग्न किया गया था। अतः पुनर्निर्माण के बाद पुराने मकान में कुल मिलाकर १२ कमरे थे। पुनर्निमित भवन ही प्रधान मठ-भवन हुआ।

नौकर निवास का अधिक परिवर्तन नहीं किया गया। उसमें पहले ही तीन कमरे थे। इसके ऊपर से केवल एक रास्ता बनाया गया जो मठ-भवन तथा मन्दिर-भवन को जोड़ता था।

मन्दिर-भवन की दूसरी मंजिल, यद्यपि १९७० ई० इसका पुनरुद्धार किया गया, अभी भी वैसी ही है जैसी कि यह १८९९ ई० में थी। बाहरी सीढ़ी पहले लकड़ी के तख्तों से बनी थी। बाद में, स्वामी विज्ञानानन्द ने भीतरी सीढ़ी ठाकुर भोग ले जाने के लिए बनायी। कई वर्षों के बाद निचली मंजिल को पुनर्निमित किया गया। निर्माण कार्य में ई०, मिट्टी चूना तथा सुरखी का व्यवहार किया गया था, क्योंकि सीमेंट उपलब्ध नहीं था।

नये मठ की शुरुआत :

२ जनवरी १८९९ ई० को नीलाम्बर मुखर्जी उद्यान-भवन से मठ को नयी जमीन पर लाया गया, यद्यपि कुछ साधु-ब्रह्मचारियों ने मठ प्रतिष्ठा दिन (९दिसम्बर १९८८) से ही यहाँ रहना शुरू कर दिया था। स्वामीजी २ जनवरी को देवघर में थे, जहाँ से वे उस महीने के अंतिम सप्ताह में मठ लौटे। अभी कहना मुश्किल है कि कौन-कौन साधु-ब्रह्मचारी जनवरी महीने में मठ में थे, क्योंकि कई लोग राहत-कार्यों तथा अन्य केन्द्रों में व्यस्त थे। परन्तु निम्नलिखित सदस्यों के बारे में हम निश्चित हो सकते हैं—स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी तुरीयानन्द, स्वामी सारदानन्द, स्वामी अद्वैतानन्द, स्वामी प्रेमानन, स्वामी सदानन्द, स्वामी विलानान्द, स्वामी निर्मला नन्द, स्वामी प्रकाशानन्द, स्वामी बोधानन्द एवं ब्र० हरिप्रसन्न, ब्र० सुधीर, ब्र० सुरेन, ब्र० ब्रजेन एवं ब्र० पर्वत।

मठ-भवन की ऊपरी मंजिल के दक्षिण-पूर्व के कमरे स्वामीजी रहते थे, जिसे अभी स्मृति-गृह के रूप में रखा गया है। बगल के कमरे में कार्यालय एवं लाइब्रेरी थी। मध्यवर्ती कमरे में स्वामी विज्ञानानन्द जी रहते थे। वे जब इलहाबाद चले गये तो, इस कमरे में स्वामी सुबोधानन्द ने रहना शुरू कर दिया। उत्तर-पूर्व के कमरे में, जिसमें अभी स्वामी अभयानन्दजी रहते हैं, स्वामी ब्रह्मानान्द जी रहते थे। स्वामी शिवानन्द तथ स्वामी प्रेमानन्द उत्तर पश्चिम के कमरे में रहते थे। निचली मंजिल के मध्यवर्ती-दक्षिणी कमरे में स्वामी तुरीयानन्द; उत्तर-पश्चिम के कमरे में स्वामी अद्वैतानन्द तथा स्वामी स्वामी निर्मलानन्द, दक्षिण-पूर्व के कमरे में स्वामी आत्मानन्द, स्वामी शुद्धानन्द, स्वामी निर्भयानन्द, ब्र० ज्ञान, तथा दक्षिण पश्चिम के कमरे में स्वामी सारदानन्द, ब्र० ब्रजेन एवं अन्य लोग रहते थे। मध्यवर्त्ती कमरा भण्डार घर था। सीढ़ी के नीचे तम्बाकू, लालटेन आदि रखने की व्यवस्था थी। उत्तर पूर्व का कमरा दर्शक कक्ष था, जो बहुद्देशीय कमरा था। यह व्याख्यान-कक्ष तथा संगीत कक्ष के रूप में भी व्यवहृत होता था। अतिथि लोग भी उसमें रहा करते थे। हार-मोनियम, पखावज, तबला, तानपुरा आदि वाद्ययंत्र तथा वारवेल, डम्बेल आदि शारीरिक कसरत करने उपकरण भी उसी कमरे में रखे जाते थे। (शारीरिक कसरत के उपकरण अभी ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र में ब्रह्मचारियों के व्यवहार के लिए रखे गये हैं।) दर्शक-

कक्ष को छोड़कर अन्य सभी कमरों में चारपाइयाँ थीं। २३ ब्रह्मचारियों के लिए रजाई खरीदने हेतु स्वामी जी ने बीस रुपये दिये थे। २४ स्वामी ब्रह्मानन्द जी अपने दैनन्दिन व्यायाम के लिए एक जोड़ा डम्बेल तथा एक जोड़ा मुद्‌गर अपने कमरे में रखते थे। प्रातः कालीन ध्यान के बाद व्यायाम किया करते थे।२५ स्वामी सारदानन्द जी अपराह्‌न में व्यायाम करते थे।[26]

जैसा कि पहले कहा गया हैं, मन्दिर, भवन की दूसरी मंजिल अभी भी पूर्ववत ही है, केवल निचली मंजिल को पुनर्निमित किया गया है। ऊपरी मंजिल में तीन कमरे थे। दक्षिण का कमरा मन्दिर के रूप में व्यवहृत होता था, जबकि उत्तर का कमरा ठाकुर का शयन घर था। मन्दिर में प्रयुक्त होने वाले कपड़ों एवं अन्य सामग्रियों को भी शयन-गृह में रखा जाता था। इन दोनों कमरों के पीछे तीसरा कमरा था, जो ध्यान-कक्ष के रूप में व्यवहृत होता था। निचली मंजिल पर दो कमरे थे। पूर्वी कमरा भोजनालय (Refectory) था तथा पश्चिमी कमरा रसोई घर था, जो अभी मठ ऑफिस का एक अंश है। इन दोनों कमरों के बीच खुला हॉल था, जो बाद में मठ-ऑफिस में बदल दिया गया। यह स्थान तरकारी काटने तथा भोजन करने के काम में आता था। २६ मन्दिर का फर्श Tiles से मँढ़ा गया था तथा वेदी के सामने झूलता हुआ दीपाधार था।

मठ के निकटवर्ती वृक्षों तथा नदी का वर्णन करते हुए स्वामीजी ने मिस क्रिस्टाइन को ६ जुलाई १९ ई० को लिखा था

यहाँ एक कटहल-वृक्ष, एक नीम वृक्ष तथा विशाल आम्र-वृक्ष हैं, जिससे मठ-भवन के सामने सुन्दर उपवन बन गया है। उन्हीं के तले मेरा मनप आसन है। फल शेष हो चुके हैं। इन दोनों वृक्षों हमलोगों ने कई हजार आम खाये हैं। कुछ कटहल अ भी बचे हुए हैं। नदी में बड़ी-बड़ी मछलियाँ दिख पड़ती हैं। अभी, जब में पत्र लिख रहा हूँ, गंगा लहरें इस भवन से टकरा रही हैं। मेरे नीचे मछ पकड़ने वाली सैकड़ों नौकाएँ हैं, जो मछलियों की खो में व्यस्त हैं।...... एकमात्र चीज, जो मुझे परेशा करती है, वह है इस विशाल नदी के ऊपर से आ जाने वाले छोटे-छोटे स्टीमर। उनसे बहुत जोरों आवाज होती है।

उन दिनों गंगा-नदी मठ-भवन के बहुत नजदी थी। बाद में, स्वामी विज्ञानानन्द ने तटबन्ध का निर्मा करके नदी को थोड़ी दूर हटा दिया। कुछ वर्षों बा नदी और भी दूर चली गयी क्योंकि तटबन्ध को फि आगे बढ़ा दिया गया था।

पाद टीकाएँ

(१.) 'उदबोधन', वर्ष-३७,अंक-४, पृ०-२३७.

(२.) श्री मती सारावाला सरकार, 'स्वामी विवेकानन्द ओ श्री श्री रामकृष्ण संघ' कलकत्ताः बंगाल पब्लिशर्स, १३६३ बंगाब्द), पृ०-१११। (इसके बाद केवल 'विवेकानन्व ओ संघ' लिखा जायगा।)

(३) सही क्षेत्रफल मालूम नहीं है। स्वामी विवेकानन्द एवं श्री भागवत नारायण सिंह के बीच हुए करार नामे में करीब २२ बीघों का उल्लेख है, जबकि देवोत्तर पत्र, जिसके द्वारा स्वामी विवेकानन्द ने न्यासियों को ६ फरवरी १९०१ को जमीन सौंपी, करीब १६ बीघों का उल्लेख है। इस बीच जमीन का कोई अंश न बेचा गया, न खरीदा गया था।

४. यह जमीन बाद में बलुड़ मठ द्वारा खरीद ली गयी। यह जमीन गिरीश मेमोरियल भवन तथा समाधि-पीठ के पीछे है। इस जमीन में सब्जी आदि की खेती होती है।

५. यह ५० फुट लम्बी तथा ४४ फुट चौड़ी जमीन थी। बाद में, मठ ने इसे खरीद लिया। गिरीश मेमोरियल का पश्चिमी हिस्सा तथा निकटवर्ती नौकर-निवास इसी जमीन पर बनाया गया।

६. गुलाम अशरफ की जमीन रामकृष्ण मिशन, सारदा पीठ के द्वारा खरीद ली गयी थी। बाद में मठ ने इसे खरीद लिया। मिशन का रिलीफ ऑफिस तथा मठ का आरोग्यभवन अभी वहाँ हैं। श्री दास तथा श्रीविश्वास ने भी अपनी-अपनी जमीन मठ के हाथों बेच डाली। इस जमीन में अभी धान की खेती होती है।

७. स्वामी दिव्यात्मानन्द, 'दिव्यप्रसंग (कलकत्ता : उद्‌बोधन कार्यालय, १३८५ बंगाब्द) पृ०—१५३

८. पुकुर' तालाब को बंगला में 'पुकुर' कहते हैं। 'गोल पुकुर' को 'गोवाल पुकुर' भी कहते थे, क्योंकि मठ की गोशाला बाद में उसके नजदीक बनायी गयी थी।

९. 'पद्‌मा पुकुर' का अर्थ कमल-सरोवर होता है।

१०. पूजनीय स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज से मिली जानकारी

११. 'पचा' का अर्थ 'सड़ा हुआ' होता है। अतएव पचापुकुर' नाम ही बतलाता है कि इस तालाव का पानी पीने लायक नहीं था।

१२. यहाँ पर अभी मठ का समाधि-स्थल है।

१३. स्वामी गम्भीरानन्द, 'युगनायक विवेकानन्द' (कलकत्ता : उद्‌बोधन कार्यालय, १३७३ बंगाब्द) खण्ड ३ पृ०-८५।

१४. सरकार, 'विवेकानन्द ओ संघ', पृ०-११२

१५. Easter and western Admirers, 'Reminiscences of Swami Viveananda' (कलकत्ता : अद्वैत आश्रम, १९६४), पृ०-२३९।

१६. The complete works of sister Nivedita (कलकत्ता : अद्वैत आश्रम, १९७२) पृ०-२७८-७९।

१७. स्वामी दिव्यात्मानन्द, 'दिव्य प्रसंग', पृ०-१५३-५४

१८. स्वामी गम्भीरानन्दजी, 'युगनायक विवेकानन्द खण्ड-३, पृ०- ७४।

१९. वेलुड़ मठ डायरी, २४ जुलाई १८९८ (अप्रकाशित)

२०. ब्रह्मलीन स्वामी बोधात्मानन्द तथा स्वामी निर्वाणानन्द से मिली जानकारी। कुछ अन्य वरिष्ठ साधुओं ने भी इसकी पुष्टि की।

२१. स्वामी ब्रह्मानन्द जी की डायरी (अप्रकाशित)

२२. स्वामी नित्यस्वरूपानन्द जी से मिली जानकारी।

२३. पूजनीय स्वामी भूतेशानन्द जी से मिली जानकारी।

२४. सरकार, 'विवेकानन्द ओ संघ', पृ०-१८९

२५. ब्र० अक्षय चैतन्य, 'ब्रह्मानन्द—लीला प्रसंग, (कलकत्ता : नवभारत पब्लिशर्स, १३८३ बंगाब्द पृ० – १३२

२६. स्वामी सारदानन्द जी की डायरी, १७ मई १८९९ (अप्रकाशित)।

२७. पूजनीय स्वामी वीरेखरानन्द जी तथा स्वामी अभयानन्द जी से निजी जानकारी।

संस्मरण

बेलुड़-मठ का दर्शन

- एक दर्शनार्थी

अक्टूबर महीने की एक अविस्मरणीय सुबह। करीब साढ़े आठ बजे का समय होगा। चारों ओर सुनहरी धूप बिखरी हुई थी ; लोग अपने-अपने कार्यों पर जा [illegible] थे; सड़क के दोनों किनारों की दूकानें धीरे-धीरे खुल रही थीं। और मैं पर्यटन विकास निगम की एक बस में बैठा खिड़की से बाहर देखते हुए कुछ सोच रहा था, तथा बस ग्रेंड ट्रंक रोड पर तेज रफ्तार से जा रही थी। अचानक, बस उस रोड से उतर कर एक बड़े फाटक को पार करती हुई एक विशाल परिसर के अन्दर आगे बढ़ती चली गयी तथा पाइप से बने एक बाड़े के पास जाकर रूक गयी। तभी किसी ने ऊँचे स्वर से कहा, "अभी हमलोग बेलुड़ मठ पहुंच गये हैं। यहाँ रुकने का समय है चालीस मिनट। इसके बाद बस खुल जायगी। याद रखें, चालीस मिनट, चालीस मिनट, चालीस मिनट। चालीस मिनट के अन्दर-अन्दर सभी अपना-अपना स्थान पुनः ग्रहण कर लेंगे।"

सभी दर्शनार्थी उत्सुक होकर बस से उतरने लगे। मैं भी उतरा तथा कुछ आगे बढ़कर चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ायी। उस सुन्दर परिवेश को देखते ही किसी प्रत्यक्षदर्शी की लिखी निम्नलिखित पंक्तियाँ मुझे एकाएक याद आ गयी।

"बेलुड़ मठ ! परम लोकोत्तर देव-स्थान ! वृक्षों, लताओं, पुष्पवाटिकाओं से परिवेष्टित विशाल परिसर तथा हरे-हरे तृणों से आच्छादित विस्तृत मैदान ! पूर्व कलकल ध्वनि करती हुई महामिलनोन्मुखी पतित-पावनी जाह्नवी ! और देवमन्दिरों की मालाएँ तथा भव्य भवनों के समूह ! साथ ही यत्र-तत्र सर्वत्र गेरुआ एवं श्वेत परिधान में विचरण करते हुए त्याग, वैराग्य, पवित्रता व्रतधारी संन्यासी एवं ब्रह्मचारी ! ऐसे मनोहारी दृश्य को देखकर हर नवागन्तुक थोड़ा रुक जाता है और सोचने लगता है, 'ऐसा दृश्य, ऐसी शांति, ऐसी स्वच्छता, ऐसा उन्मुक्त वातावरण कलकत्ता जैसी विशाल महानगरी के पास भी क्या संभव हो सकता है ! क्या मैं किसी दिव्य लोक में तो नहीं पहुँच गया हूँ !' ऐसी ही उद्‌भुत है बेलुड़ मठ की यह पवित्र भूमि, जहाँ घनीभूत है स्वामी विवेकानन्द आदि महापुरुषों की मधुर स्मृतियाँ।"

धीरे-धीरे सभी मुख्य मन्दिर के सामने आकर एकत्रित हो गये; साथ में गाइड भी थे। वहाँ खड़ा होकर गाइड ने बताना शुरू किया, "यह है बेलुड़ मठ, रामकृष्ण भावान्दोलन का प्रधान केन्द्र। १८९८ ई० में स्वामी विवेकानन्द ने इसकी स्थापना की थी। घृणा द्वेष एवं स्वार्थ से पूर्ण इस पृथ्वी पर यह मठ त्याग एवं सेवा, समन्वय एवं शांति तथा चिरन्तन सत्य का प्रतीक है। कट्टरता एवं साम्प्रदायिकता से पूर्णतः मुक्त, अपने दृष्टिकोण में सम्पूर्णतया आधुनिक एवं युक्तिपरायण— यह भावान्दोलन एक ऐसे युग के निर्माण में तत्पर है, जिसमें जाति, वर्ण अथवा सम्प्रदायगत भेदभाव का कोई स्थान नहीं होगा, मानव अपनी पूर्णता को प्राप्त करेगा तथा मानव के द्वारा की जाने वाली हर प्रचेष्टा ईश्वर की पूजा होगी। आज इस बेलुड़ मठ के अन्तर्गत सवा सौ से अधिक शाखा केन्द्र हैं, जो देश-विदेश में धर्म की ध्वजा को धारण किये हुए विभिन्न प्रकार के सेवा-यज्ञों में संलग्न हैं।

सामने जो विराट् एवं भव्य मन्दिर देख रहे हैं,

यह है श्री रामकृष्ण मन्दिर। स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने इस मन्दिर को परिकल्पना की थी, जिसे १९३८ ई० में साकार रूप दिया था उन्हीं के एक गुरुभाई स्वामी विज्ञानानन्द ने। पत्थर से बने इस मन्दिर के निर्माण में करीब आठ लाख रुपये खर्च हुए थे। इसके अन्दर भगवान श्री रामकृष्ण देव की भस्मास्थि सुरक्षित है। भारत के आधुनिक मन्दिरों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न धर्मों के मूलभावों को इस मन्दिर में एक साथ पिरोकर श्री रामकृष्ण द्वारा प्रचारित धर्म की सार्वभौमिकता को व्यक्त करने की चेष्टा यहाँ की गयी है। देश-विदेश की विभिन्न श्रेष्ठ शिल्प-कलाओं का इसमें सुन्दर समावेश किया गया है। मन्दिर के प्रवेश-द्वार के ठीक ऊपर जो एक बड़ा सा प्रतीक देख रहे हैं, इसकी भी परिकल्पना स्वामीजी ने ही की थी। इस प्रतीक में चित्रित तरंगायित जलराशि कर्म का, प्रस्फुटित कमल भक्ति का तथा उगता हुआ सूर्य ज्ञान का द्योतक है। वृत्ताकार सर्प योग एवं जाग्रत कुंडलिनी शक्ति का परिचायक है तथा मध्यस्थ हंस की प्रतिकृति का अर्थ परमात्मा है। कर्म, भक्ति एवं ज्ञान, योग के साथ सम्मिलित होने पर परमात्मा का दर्शन होता है—इस प्रतीक का यही अर्थ है। अतएव यह प्रतीक मानव-जीवन के उद्देश्य का एक व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है। बेलुड़ मठ का यही आदर्श है।

रामकृष्ण मन्दिर के उत्तर-पूर्व में गंगा के किनारे जो दो मंजिला मकान देख रहे हैं, वही पुराना मठ-भवन है। ऊपर के दक्षिण-पूर्वी कमरे में स्वामी विवेकानन्द रहते थे तथा इसी कमरे में ४ जुलाई १९०२ई० को वे महासमाधि में लीन हुए थे। उनके द्वारा व्यवहृत सारी चीजें वहाँ सुरक्षित रखी हुई हैं।

मठ-भवन के पास एक और दो मंजिला मकान है। इसके ऊपरी मंजिल पर श्री रामकृष्ण का पुराना मन्दिर है। ८९९ ई० से लेकर नये मन्दिर की प्रतिष्ठा तक इसी मन्दिर में उनकी नित्य पूजा होती थी। स्वामी विवेकानन्द तथा उनके अन्य गुरुभाईगण इसी मन्दिर में पूजा, जप-ध्यान तथा प्रार्थना आदि किया करते थे। मन्दिर-भवन की निचली मंजिल में अभी मठ-कार्यालय है।

गंगा किनारे जो तीन मन्दिर देख रहे हैं, वे सभी समाधि मन्दिर हैं। उनमें सबसे पहला है ब्रह्मानन्द मन्दिर। स्वामी ब्रह्मानन्द रामकृष्णदेव के अन्तरंग शिष्य तथा रामकृष्ण मठ-मिशन के प्रथम अध्यक्ष थे। सुदीर्घ २२ वर्षों तक वे इस पद पर आसीन थे। १९२२ ई० में इन्होंने अपना देहत्याग किया तथा १९२४ ई० में वर्तमान मन्दिर का निर्माण किया गया।

फिर है, श्री सारदादेवी का मन्दिर अथवा 'माँ मन्दिर'। श्री सारदादेवी श्री रामकृष्ण देव की लीला संगिनी तथा रामकृष्ण संघ की संघजननी थीं। १९२० ई० में उन्होंने अपनी लीला संवरण की तथा १९२१ ई० में उनकी समाधि पर यह मन्दिर बनाया गयो। यहाँ सभी उन्हें 'श्री श्री माँ' कहकर पुकारते हैं।

सबसे अंत में है स्वामी विवेकानन्द का समाधि-मन्दिर। यह दो मंजिला मंदिर है। नीचे स्वामीजी की समाधि तथा ऊपर ओम् मन्दिर है। १९२४ ई० में इस मन्दिर का निर्माण कार्य पूरा हुआ था।

स्वामीजी-मन्दिर के दक्षिणी प्रान्त में समाधि-पीठ है। श्री रामकृष्ण के सात संन्यासी शिष्यों का अतिम संस्कार यहीं किया गया था। समाधि-पीठ के पश्चिम में अध्यक्ष निवास है।

मुख्य मन्दिर के उत्तर पश्चिम दिशा की ओर वृक्षों की ओट में ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र है तथा इसके पीछे साधु-निवास, भोजनालय, ग्रन्थागार तथा सभा-कक्ष है। साथ ही मठ के दक्षिणी प्रान्त में अतिथि-भवन, गोशाला आदि है।

बेलुड़ मठ के चारों ओर हैं सारदापीठ द्वारा परिचालित शिक्षण-संस्थाएँ। सारदापीठ बेलुड़ मठ का ही एक शाखा केन्द्र है।"

इतना कहते-कहते गाइड की नजर मिशन-कार्यालय के सामने खड़े कुछ साधु-ब्रह्मचारियों पर पड़ी और वे आवेग के स्वर में बोल उठे, "वो देखो, त्याग एवं सेवा के मूर्तिमान स्वरूप साधु एवं ब्रह्मचारी। 'आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च' के महान आदर्श को धारण कर उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग कर दिया है। धन्य है उनका जीवन; धन्य है भारतभूमि, जो ऐसे सपूतों को जन्म देती है।" सभी दर्शनार्थी अवाक् होकर गाइड के मुख से निःसृत इन शब्दों को सुन रहे थे। मैंने मन ही मन उन त्यागी पुरुषों को प्रणाम किया।

रामकृष्ण मन्दिर : इसके बाद सभी उपर्युक्त मंदिरों को देखने चले। सबसे पहले श्री रामकृष्ण मंदिर। इस भव्य मंदिर के स्थापत्य एवं वास्तु शिल्पीय गढ़न को देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। विशाल एवं सुन्दर प्रवेश द्वार का अतिक्रमण कर मैं एक सुदीर्घ प्रार्थना गृह में पहुँच गया था। बड़े-बड़े एवं सुसज्जित खम्भों पर यह प्रार्थना गृह टिका हुआ है। प्रार्थनागृह एवं गर्भगृह चर्च की तरह एक साथ संलग्न है। नो गुम्वजों वाला गर्भगृह बहुत ही प्रशस्त एवं खुला है। इसके ऊपर नौ ग्रहों के चित्र बने हुए हैं। अन्दर एक प्रस्फुटित कमल पर श्री रामकृष्णदेव की संगमरमर की मूर्ति शोभायमान हो रही है। प्रस्फुटित कमल डमरू आकार की एक वेदी पर अवस्थित है। वेदी के सामने भाग में एक हंस चित्रित है। मूर्ति के ऊपर काष्ठ-निर्मित एक सुन्दर मण्डप है। दोनों ओर दो प्रकाश: स्तम्भ एवं दो प्रदीप स्तम्भ हैं। सामने पूजा के उपकरण रखे हुए थे। गर्भमन्दिर के एक कोने में बैठकर एक साधु जप कर रहे थे। रामकृष्णदेव की मूर्ति बड़ी ही मनोहारी एवं जीवन्त है। वहाँ जाने पर ऐसा लगता है कि वे साक्षात् बैठे हैं तथा आने-जाने वाले हर लोगों को आशीर्वाद प्रदान कर रहे हैं। मैंने भी मन्दिर के देवता को प्रणाम कर उनके आशीर्वाद की याचना की। मन्दिर के सौन्दर्य, इसकी भव्यता एवं इसमें विभिन्न शिल्प-कलाओं के सुन्दर समावेश का वर्णन करना मेरे वश के बाहर की बात है। केवल 'मूक आस्वादन वत्' मैंने इस मन्दिर का दर्शन किया। लोग यहाँ आकर स्वयं इस मन्दिर को देखेंगे वही स[मझ] सकेंगे कि स्वामीजी कि कैसी अद्‌भुत परिकल्पना थी।

पुराना मन्दिर : मुख्य मंदिर का दर्शन कर पुरा[ने] मन्दिर गया। इसकी वेदी पर श्री रामकृष्णदेव [की] एक बड़ी प्रतिकृति रखी हुई है। उनके वामपार्श्व [में] श्री सारदा देवी तथा दक्षिण पार्श्व में स्वामी विवेकान[न्द] की छवि काष्ठ-निर्मित सिंहासन पर सुशोभित है। मंदि[र] के मध्यवर्ती भाग में दीवार से सटा हुआ एक काष्ठास[न] है जिसपर स्वामी ब्रह्मानन्द का चित्र है। वेदी के ऊप[र] दीवार में सुन्दर मेहराव बने हुए हैं। सामने दो प्रदी[प] छत के सहारे लटक रहे हैं। बगल के कमरे में स्वाम[ी] शिवानन्द जी (रामकृष्ण मठ-मिशन के द्वितीय अध्यक्ष एवं रामकृष्णदेव के साक्षात् शिष्य) के द्वारा व्यवहृ[त] चीजें रखी हुई हैं। एक पलंग, दो कुर्सियाँ, टेबुल आलमारी, रैक इत्यादि। पलंग एवं कुर्सियों पर उनके चित्र रखे हुए हैं। टेबुल पर श्री रामकृष्ण, श्री सारदा देवी, एवं श्री हंसेश्वरी देवी की छवि रखी हुई हैं। रामकृष्ण के हस्ताक्षर की एक प्रतिलिपि तथा भगवान शंकर की एक मूर्त्ति भी उस टेबुल पर है। पुराने मन्दिर का दर्शन कर मैंने मन ही मन कहा, 'यह वही स्थान है, जहाँ स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुषों ने ईश्वर की पूजा-अर्चना की थी। उनके द्वारा की गयी आध्यात्मिक साधनाओं के स्पन्दन तथा उनके द्वारा गाये गये भक्ति संगीतों की गूंज अभी भी इस वातावरण में घनीभूत होगी। कई भाग्यवान् साधक इन स्पन्दनों को ग्रहण कर धन्य होते होंगे।'

स्वामीजी का कमरा : फिर स्वामीजी का कमरा। दक्षिणवर्ती सीढ़ी से ऊपर चढ़कर मैंने अपने आप को एक ऐतिहासिक कमरे के पास पाया। यह वही कमरा है जिसमें एक युगपुरुष रहते थे, जहाँ उन्हें कितनी ही भाव-समाधियाँ हुई होंगी तथा कितने ही विश्व कल्याण-कारी भावों का सृजन हुआ होगा। यह कमरा एवं इसमें रखी सभी वस्तुएँ उस युगस्रष्टा ऋषि के महान

जीवन, अनुपम उपदेशों एवं अद्‌भुत कार्यों की याद दिलाती हैं तथा हर आगन्तुक को महान उद्देश्य लेकर जीवन धारण करने की प्रेरणा देती हैं। जिस बरामदे पर मैं खड़ा था, उधर उस कमरे की दो खिड़कियाँ खुलती हैं। इन्हीं खिड़कियों से होकर लोग कमरे में रखी वस्तुओं को देखते हैं। पहली खिड़की के सामने शीशे के एक बक्से के अन्दर दो जोड़े खड़ाऊँ तथा एक जोड़े जूते रखे हुए हैं। पास में ही लोहे का एक बड़ा पलंग है। इसके अतिरिक्त उस कमरे में दो छोटी-छोटी चारपाइयाँ, एक टेबुल, दो कुर्सियाँ, एक आराम बेंच, एक बड़ी आलमारी तथा कई छोटे-छोटे रैक हैं। सभी चारपाइयों एवं कुर्सियों पर स्वामीजी के चित्र रखे हुए हैं। टेबुल पर रामकृष्णदेव का धातु के फ्रेम से मढ़ा हुआ एक चित्र एक छोटे से मण्डप में रखा हुआ है। स्वामीजी का भी परिव्राजक चित्र अन्य एक मण्डप में उस टेबुल पर है। स्वामीजी द्वारा व्यवहृत तानपुरा, ढोलक, तीन लाठियाँ, कमण्डलु एवं पगड़ी दूसरी खिड़की के सामने दूर दीवार के पास रखी हुई हैं। कमण्डलु एवं पगड़ी शीशे के बक्से में बन्द हैं। एक बड़ा सा दर्पण (करीब ४ फुट का) भी रखा हुआ है। रैक के ऊपर कांच के बक्से के अन्दर कुछ फूल रखे हुए हैं। शायद ये फूल स्वामीजी को दिये गये होंगे। उत्तर-पूर्व के कोने में स्वामीजी का ध्यानमुद्रा वाला एक बड़ा चित्र दीवार के सहारे टँगा हुआ है, जिसके ऊपर श्री रामकृष्ण एवं श्री सारदा देवी के चित्र टँगे हुए हैं। सभी वस्तुएँ बहुत ही सुसज्जित ढंग से रखी गयी हैं। एक चारपाई पर स्वामीजी का बाघाम्बर आसन है। दूसरी खिड़की के पास कुर्सी पर स्वामीजी का जो चित्र है, उसको देखने पर लगता हैं कि वे हर दर्शक की ओर एक टक से देख रहे हैं। सचमुच ही, हर आगन्तुक से बातें करने के लिए वे वहाँ चिर विराजमान हैं। उनके बड़े-बड़े नेत्र मानो दर्शनार्थियों के अन्तःस्थल को भेदकर कुछ खोज रहे हैं। उस चित्र की ओर अधिक देर तक देखने की हिम्मत नहीं होती है। स्वामीजी को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर तथा उनके महान जीवन से प्रेरणा ग्रहणकर मैं नीचे उतर आया।

ब्रह्मानन्द मन्दिर की ओर जाते समय मेरी दृष्टि एक विशाल वृक्ष पर पड़ी, जिसमें तने में बड़े ही सुन्दर सुन्दर फूल खिले थे। मैंने कभी भी ऐसा पुष्प वृक्ष नहीं देखा था। पास में ही खड़े एक रक्षक से पूछने पर उसने कहा कि यह 'नागलिंगम्' का पेड़ है, जिसे स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने लगवाया था। पास में ही स्वामी ब्रह्मानन्द जी के लगाये हुए और दो पेड़ (कदम्ब तथा बरगद) हैं। मठ-प्रांगण में भी (मठ-भवन के पश्चिम) आम का एक पुराना पेड़ है। पता चला कि इसके नीचे स्वामीजी प्रतिदिन बैठते थे तथा इस पेड़ की ओर दिखाकर एकबार स्वामी शिवानन्द जी ने कहा था, इच्छा करने पर इस पेड़ में जितने पत्ते हैं सभी को मुक्त कर सकता हूँ।

स्वामी ब्रह्मानन्द मन्दिर : बट एवं कदम्ब आदि वृक्षों को देखते हुए मैं ब्रह्मानन्द मन्दिर के पास पहुँच गया। यह मन्दिर छोटा, परन्तु सुन्दर है। इसके चारों ओर बरामदे हैं जिनके खम्भों के शीर्ष भाग का वस्तु-शिल्पीय गढ़न देखने में बहुत ही अच्छा लगता है। मन्दिर के प्रधान गुम्बज के अतिरिक्त और भी चार छोटे-छोटे गुम्बज चारों कोने पर हैं। इन गुम्बजों के बीच छोटी-छोटी छत्रियां हैं। प्रत्येक गुम्बज के शीर्ष पर आमलक कलश एवं विष्णुचक्र स्थापित है। मंदिर का फर्श संगमरमर पत्थर से मँढ़ा गया है। गर्भगृह के अन्दर स्वामी ब्रह्मानन्द जी की संगमरमर मूर्त्ति है। मूर्त्ति को देखने पर लगता है कि कोई राजा अपने सिंहासन पर बैठे हैं। विशाल व्यक्तित्व है उनका। माथे पर एक टोपी तथा शरीर पर एक वस्त्र तथा मन किसी दूसरे राज्य में। मूर्ति के पीछे दीवाल से सटकर दोनों ओर दो-दो स्तम्भ तथा उसके ऊपर सुंदर मेहराब बना हुआ है, जो फूल-पत्तियों से सज्जित है। स्वामी ब्रह्मानण्द जी के चरणों में प्रणाम निवेदित कर मैं माँ-मंदिर की ओर चला।

श्री सारदादेवी मन्दिर : माँ का मन्दिर अपेक्षाकृत छोटा है, परन्तु बरामदे के खम्भों के बीच का मेहराब अति सुन्दर बनाया गया है। ऊपर प्रधान गुम्बज के साथ

चार अर्ध गुम्बज एक साथ इस प्रकार संलग्न हैं मानो पाँच पृथक गुम्बज हों। गुम्बजों में खाँच कटे हुए हैं। प्रत्येक गुम्बज के शीर्ष पर आमलक, धातु निर्मित दो कलश एवं एक पताकादण्ड है। मन्दिर का फर्श संगमरमर से मढ़ा गया है। सामने के द्वार के ऊपर महिषासुर मर्दिनी की एक मूर्ति रखी हुई है। गर्भमन्दिर के अन्दर काले पत्थर की एक वेदी के ऊपर काष्ठ का एक सुन्दर मण्डप है। यह मण्डप देखने में ग्रामीण घर जैसा लगता है। हो सकता है माँ सारदा का वासगृह इसी आकार का हो। मण्डप के अन्दर माँ सारदा की छवि सुशोभित है। छवि के नीचे उनका पदचिह्न रखा हुआ है। माँ सारदे की बायीं ओर एक शिवलिंग एवं दायीं ओर श्री रामकृष्ण का एक पुराना चित्र है। श्वेतपटावृता माँ के दोनों हाथों में सोने के कंगन तथा गले में एक हार है। माँ देखने में अति साधारण लगता हैं तथा चेहरे पर शांति एवं मातृत्व का भाव झलकता है। मैंने मन ही मन कहा, "यही हैं श्री रामकृष्ण आराधिता, स्वामी विवेकानन्द वन्दिता, अगणित भक्त-वृन्द पूजिता श्री माँ सारदा देवी। न जाने कितने असहाय शरणहीन नर-नारियों की माँ हैं यह। उनकी ओर देखने से लगता है कि यह मेरी जन्म-जन्म की माँ है। माँ के चरणों में साष्टांग प्रणाम निवेदित कर मैंने उनसे विदा ग्रहण की। इस समय सामने गंगा में कई लोग स्नान कर रहे थे तथा कुछ छोटे-छोटे बच्चे आनन्दपूर्वक जल-क्रीड़ा कर रहे थे और माँ अपने उन बच्चों को देख-देखकर मानो आनन्दित हो रही थीं।

स्वामीजी मन्दिर : मठ के दक्षिणी भाग में स्वामीजी का समाधि-मन्दिर है। माँ मन्दिर से देवदार के बड़े-बड़े वृक्षों के नीचे से होकर लोग वहां जाते हैं। स्वामीजी के मंदिर की निचली मंजिल में उनकी समाधि तथा ऊपर ओम् मंदिर है। नीचे की मंजिल अत्यन्त ही संकीर्ण एव चारों ओर से घिरी है। स्वामीजी की समाधि भूमितल में है तथा गर्भगृह का फर्श भूमितल से भी नीचे है, अतएव गर्भ गृह गुफा की तरह लगता है। इसे देखकर लगता है मानो स्वामीजी गुफा के अन्दर ध्यानस्थ हैं। समाधि के ऊपर स्वामीजी की रिलीफ मूर्ति दीवार के साथ बनी हुई है। यह रिलीफ मूर्ति प्राय: गंगाप्रवाह के समतल में स्थापित है, इससे लगता है मानो गंगा की लहरों पर स्वामीजी भासमान हैं। समाधि मन्दिरों में इतना शांत एवं गम्भीर वातावरण है कि थोड़ा सा भी शब्द करने से लोग वहां हिचकिचाते हैं।

ऊपर ओम मन्दिर है। काले पत्थर की एक वेदी पर एक छोटा सा आधार, आधार के ऊपर कलश, कलश के ऊपर पुष्प एवं पुष्प के उपर ओम का प्रतीक है। यह मन्दिर प्रशस्त एवं काफी ऊँचा है। चारों ओर चौड़े बरामदे हैं। पूर्व एवं प्रश्चिम में राजप्रसाद के खम्भों की तरह दो-दो विशाल स्तम्भ हैं। ऊपरी मंजिल पर जाने के लिए सामने दोनों ओर दो सीढ़ियां हैं। मुख्य गुम्बज के अतिरिक्त आठ और छोटे-छोटे गुम्बज हैं। मुख्य गुम्बज के ऊपर त्रिशूल है जो स्वामीजी की शिव-सत्ता का परिचायक है। मंदिर का मध्यवर्ती भाग काफी ऊँचा है। कुल मिलाकर इस मंदिर की निर्माण शैली भी बहुत अच्छी है।

मन्दिर के पास ही एक विल्ववृक्ष है। इसके चारों ओर चबूतरे बने है। कहा जाता है कि यहीं पर स्वामीजी प्राय: संध्या समय बैठा करते थे। पुराने विल्ववृक्ष के स्थान पर एक नया विल्ववृक्ष लगाया गया है।

समाधि पीठ : स्वामीजी मंदिर के थोड़ा दक्षिण समाधि पीठ है। दो फुट की ऊँचाई वाली दीवार तथा उसके ऊपर लगे लोहे के बाड़े से घिरा एक छोटा सा भूमिखंड, जिसके चारों कोने पर फूल के चार पौधे हैं तथा बीच में कृष्ण चूड़ा फूल का एक बड़ा पेड़ है। कृष्ण चुड़ा के नीचे एक शिला-स्तम्भ है, जिसपर अंग्रेजी एवं बंगला में निम्नलिखित पंक्तियाँ खुदी हुई हैं :

"इसी पवित्र भूमि पर भगवान श्री रामकृष्णदेव के निम्नलिखित संन्यासी शिष्यों की पूतदेह अग्नि को समर्पित की गयी थी—

शिष्यों के नाम	जन्म तिथि	महासमाधितिथि
(१) स्वामी अद्वैतानन्द	—१८२८	२८-१२-१९०४
(२) स्वामी रामकृष्णनन्द	११-७-१८६३	२१-८-१९११
(३) स्वामी प्रेमानन्द	१०-१२-१८६१	३०-७-१९१८
(४) स्वामी सारदानन्द	२[illegible]-११-१८६५	१९-८-१९२७
(५) स्वामी सुबोधानन्द	८-११-१८६७	२-१२-१९३२
(६) स्वामी शिवानन्द	१६-१[illegible]-१८५४	२०-२-१९३४
(७) स्वामी अखण्डानन्द	३०-९-१८६४	७-२-१९३७

समाधि-पीठ के पास ही गंगा के किनारे अन्य साधुओं का समाधि-स्थल है। जहाँ एक महापुरुष की समाधि होती है, वह स्थान तीर्थ बन जाता है और यहाँ तो कई महापुरुषों की समाधियाँ हैं, सैकड़ों साधु वास करते हैं, अत: यह स्थान तो महातीर्थ है। मैं ऐसे तीर्थ में आकर अपवे आपको धन्य समझने लगा।

समाधि-पीठ का दर्शन कर जब मैं लौट रहा था तो मेरी मुलाकात एक ब्रह्मचारी से हुई। उनके साथ मेरी निम्नलिखित बातचीत हुई :

दर्शनार्थी—क्या मैं आपसे एक प्रश्न पूखूं ?

ब्रह्मचारी—हाँ, हाँ, क्यों नहीं ? जरूर पूछिए।

दर्शनार्थी—यहाँ मुख्य मन्दिर में किसी अन्य देवी-देवता अथवा अवतार की मूर्ति न रखकर श्री रामकृष्ण की ही मूर्ति क्यों स्थापित की गयी है ?

ब्रहमचारी श्री रामकृष्ण थे सर्व देव-देवी-स्वरूप। एक ही आधार में वे राम, कृष्ण, बुद्ध, चैतन्य सभी थे। हिन्दुओं के तमाम आध्यात्मिक आदर्शों के वे मूर्त विग्रह थे। इतना ही नहीं, इस्लाम एवं ईसाई धर्मों की भी साधना कर सर्वधर्मसमन्वय के महान आदर्श की उन्होंने प्रतिष्ठा की थी। जिन आदर्शों का उन्होंने प्रचार किया था तथा जिन आदर्शों का परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द ने प्रसार किया था, उन आदर्शों के वे घनीभूत रूप थे और उन्हीं आदर्शों का प्रधान केन्द्र है वेलुड़ मठ। अत: यह स्वाभाविक है कि यहाँ के मुख्य मन्दिर में उन्हीं की पूजा-आराधना होगी। केवल स्वामीजी के गुरु होने के कारण उनकी पूजा होती हो, ऐसी बात नहीं है, वे थे युगावतार। स्वामीजी ने तो उन्हें 'अवतारवरिष्ठ' की संज्ञा दी थी।

दर्शनार्थी—आज आपने मेरी आँखें खोल दी। आज तक मैं यह रहस्य नहीं जानता था।

ब्रह्मचारी—मैंने जो कुछ कहा है, वह अक्षरश: सच है; कपोल-कल्पना नहीं।

दर्शनार्थी—अच्छा, यहाँ और कोई दर्शनीय स्थल है ?

ब्रह्मचारी—हाँ, यहाँ से थोड़ी ही दूर पर गंगा के किनारे एक ऐतिहासिक भवन है जो पहले नीलाम्बर मुखर्जी का उद्यान-भवन था। बेलुड़ मठ की जमीन खरीदने के पहले मठ वहीं था। वहाँ पर श्री श्री माँ भी बहुत दिनों तक रही थीं तथा 'पंचतपा' नामक साधना भी की थीं। जिस कमरे में वह रहती थी, उसमें अभी उनकी छवि रखी हुई है। वहीं पर गंगा किनारे एक घाट है, जहाँ माँ रोज गंगा स्नान करती थीं। एक दिन माँ उस घाट पर बैठी थीं। अचानक, वह देखती है कि श्री रामकृष्ण पीछे से आकर गंगा में मिल गये हैं तथा स्वामीजी इस गंगाजल को वहाँ एकत्रित हजारों लोगों के ऊपर छिड़क रहे हैं। इस भवन के साथ स्वामी विवेकानन्द एवं उनके गुरुभाइयों की भी स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। अभी वह उद्यानगृह बेलुड़ मठ के अन्तर्गत है।

एक सज्जन (हठात् कहीं से आकर ब्रह्मचारी के प्रति) - क्या आप यहीं रहते हैं ?

ब्रह्मचारी—हाँ, मैं यही रहता हूँ।

एक सज्जन—(आवेग के स्वर में) जब मैं बहुत छोटा था तो, अपने माता-पिता के साथ प्रतिदिन संध्या समय वेलुड़ मठ आया करता था। यहाँ मैं उछलता, कूदता, खेलता और फिर उनके साथ घर लौट ज.ता। मेरे माता-पिता यहीं रहते थे। अभी मैं ढाका में नौकरी करता हूँ। बहुत दिनों के बाद यहाँ आया हूँ। आज मेरे माता-पिता नहीं हैं, फिर भी बेलुड़ मठ के अजीब आकर्षण से मैं यहा खिचा चला आया हूँ। मैं रामकृष्ण

का अनुयायी नहीं हूँ, फिर भी यहां की हर चीज मुझे प्रिय लगती है, अपनी लगती है। इसलिए मैं घूमघूमकर सब स्थानों को देख रहा हूँ एवं अपने विगत दिनों की याद कर रहा हूँ।

ब्रह्मचारी—अभी भी सैकड़ों लोग यहाँ प्रतिदिन आते हैं; कुछ लोग तो देवदर्शन करने को आते हैं और कुछ लोग शहर के दमघुटे वातावरण से ऊबकर खुली एवं स्वच्छ हवा में साँस लेने आते हैं। बाल-वृद्ध वनिता, स्त्री-पुरुष, धार्मिक-अधार्मिक, देशी-विदेशी सभी तरह के लोग यहाँ आते हैं तथा शांति एवं आनन्द की प्राप्ति करते है। जाइए, सभी स्थानों को जी भरकर देखिए।

दर्शनार्थी (उस सज्जन के चले जाने पर) -बेलुड़ मठ से संबंधित कोई पुस्तिका मिल सकती है ?

ब्रह्मचारी—अवश्य मिलेगी। आइए मेरे साथ।

वे मुझे साथ लेकर मुख्य मन्दिर के सामने स्थित मिशन-कार्यालय में गये तथा वहाँ से दो छोटी-छोटी पुस्तिका लाकर उन्होंने मुझे दी। रामकृष्ण संघ की उत्पत्ति कैसे हुई, इस संघ के क्या आदर्श हैं तथा बेलुड़ मठ में कौन-कौन सी दर्शनीय चीजें हैं? इन्हीं प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर उस पुस्तिका में दिये गये हैं। विस्तार के भय से इन सारी बातों का उल्लेख मैं यहाँ नहीं कर रहा हूँ।

पुस्तिका मेरे हाथ में देते हुए ब्रह्मचारी ने कहा, "यदि आप और भी पुस्तकें खरीदना चाहें तो, पूछताछ कार्यालय में चले जायें वहाँ पुस्तकें बिकती हैं। वहाँ पर श्री रामकृष्ण देव, माँ सारदा, स्वामीजी तथा बेलुड़ मठ के मन्दिरों के चित्र भी आप खरीद सकते हैं। इससे भी बड़ा पुस्तक केन्द्र सारदा पीठ में ग्रैंड ट्रंक रोड के पास है। वहाँ पर रामकृष्ण-विवेकानन्द एवं वेदान्त संबंधी सभी पुस्तकें मिलती हैं। उस पुस्तक केन्द्र की ऊपरी मंजिल पर रामकृष्ण-विवेकानन्द के जीवन एवं संदेशों पर एक चित्र-प्रदर्शनी भी है। समय मिलने पर वह भी देख सकते हैं।

इतना कहकर ब्रह्मचारी चले गये और मैं मिशन कर्यालय के सामने एक पट पर लिखे रामकृष्ण मिशन द्वारा गुजरात, आसाम, बिहार, बंगाल, दिल्ली एवं बंगलादेश में चलाये जा रहे राहत- कर्यों का विवरण पढ़ने लगा। तभी बस खुलने की सीटी बजी। मैंने अपनी घड़ी की ओर देखा—चालीस मिनट पार हो चुके थे। दौड़कर बस में जा चढ़ा और बस खुल गयी। जब मैं बस की ओर दौड़ा जा रहा था तो, मठ के पेड़-पौधे, मन्दिर-भवन, पशु-पक्षी, सड़क-मैदान तथा हवा के कण-कण से मानो एक ही आवाज आ रही थी—"फिर आना, फिर आना, फिर आना,।"

देखते ही देखते बस मुख्य फाटक को पार करती हुई जी० टी० रोड पर जा चढ़ी तथा तेज रफ्तार से आगे बढ़ती चली गयी। बेलुड़ मठ का वह अनुपम दृश्य मेरी आँखों से ओझल हो गया। परन्तु अभी भी जब कभी शांत होकर बैठता हूँ तो, मेरे मानस-पटल पर वे सभी दृश्य पुनः भासित होने लगते हैं तथा वह आवाज पुनः मेरे कानों में गूँजने लगती है—'फिर आना'।

जन्म दिन (३० दिसम्बर)

मातृत्व की स्थापना

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम
वाराणसी

माँ सारदा का विश्व मातृत्व

माँ सारदा के जीवन एवं चरित्र की अनेक विशेषताएँ हैं। अपनी निरंहकारिता, कर्मठता, सहिष्णुता आदि के द्वारा वे स्त्री-पुरुषों, गृहस्थ-संन्यासियों संसारी-साधकों, सभी के समक्ष अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत कर गयी हैं। लेकिन जिस एक वैशिष्ट्य के कारण वे सभी को सबसे अधिक मोहित एवं प्रभावित, एवं अपनी ओर आकृष्ट, करती हैं, वह है संसार के सभी प्राणियों के प्रति उनका मातृभाव। वे स्वयं कहती थीं कि वे सभी की माँ है। मनुष्यों की ही नहीं, पशु-पक्षियों, यहां तक कि कीट पतंगों की भो। "मैं सत् की भी मां हूँ, असत् की भी मां हूँ।" गिरीषचन्द्र घोष के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था : "मैं बनायी हुयी माँ नहीं, कहने भर की माँ नही गुरु पत्नी की दृष्टि से माँ नहीं, सत्य जननी हूँ।" वे तत्कालीन बंगाल के क्रान्तकारी युवकों को अपनी सन्तान समझती थी, और उन अंग्रेजों को भी अपनी संतान मानती थीं। जिनके विरुद्ध वे विद्रोह कर रहे थे। उनकी प्रसिद्ध युक्ति है : अमजद (मुसलमान डकैत) भी मेरा उसी तरह पुत्र है जिस प्रकार सरत् (महान सन्त स्वामी सारदानन्द)।

मां का यह सर्वजनीन मातृत्व उनके व्यवहार एवं आचरण में भी परिलक्षित होता था। माता की तरह वे सभी को खिलाने के बाद भोजन करती थीं। जिस प्रकार मां अपनी सन्तानों की रुचि, विशेषकर भोजन विषयक, तत्काल जान लेती है, उसी प्रकार माँ सारदा उनके पास आने वाली सभी व्यक्तियों की आहार विषयक रुचि को जानकर उन्हें निज-निज रुचि अनुसार भोजन देती थीं। भक्तों के बिदा होने पर अश्रुसिक्त नयनों से उन्हें दूर तक विदा करने जाती थीं. तथा उनके आगमन की निराहार रहकर प्रतीक्षा करती थीं। मां के घर पर गंगाराम नामक पालतू तोता था, जब वह "माँ—ओ माँ" करके पुकारता तो मां भी "आती हूँ बेटा" कहकर उसे दाना देने दौड़ पड़ती थीं। बछड़े की पुकार सुनकर गाय की तरह वे उसकी ओर दौड़ जाती थीं। उनकी जीवन कथा इस प्रकार के अनेक दृष्टान्तों से ओत प्रोत है।

भक्तों को भी मां सारदा में इस मातृस्नेह एवं आत्मीयता का स्पष्ट बोध होता था। सभी को यही लगता था मानो वे अपनी जन्मदात्री माँ के पास आ गये हों। कुछ भाग्यवान लोग तो माँ सारदा को अपनी जननी के रूप में प्रत्यक्ष देखकर धन्य भी हुए हैं। माँ सारदा का यह मातृत्व इतना प्रबल है कि यह आज, उनके तिरोधान के अनेक वर्षों बाद भी उनके चित्रों से प्रकट होता है। कुछ रोचक घटनाएँ इसकी सत्यता को प्रकट करती हैं : एक बालिका अपनी माता के साथ बेलुड़ मठ का दर्शन करने आयी। अन्यान्य मन्दिरों में दर्शन करने के बाद जब वह मां सारदा के मन्दिर में आई तो वहाँ प्रतिष्ठित माँ के चित्र को देखकर दंग रह गई। कुछ देर एकटक उस चित्र को देखकर उसने गौर से अपनी जननी की ओर देखा और उससे

पूछा, "माँ सच बता यह तेरा ही फोटो है ना।" उसकी माँ क्या जवाब देती ! बालक की सरल दृष्टि ने चेहरे की बनावट के पार्थक्य के पीछे स्थित मातृत्व के उस साम्य को हृदयंगम कर लिया था, जो उसकी माँ में उसे मिलता था, तथा, जिसकी घनीभूत विग्रह स्वरूपा थीं माँ सारदा। रामकृष्ण मिशन के एक संन्यासी ने एक बार एक मुसलमान की छोटी सी दुकान में माँ सारदा के चित्र को देखा। उत्सुकता वश वे दुकान में गये। प्रारम्भिक अभिवादन के बाद उन्होंने दुकानदार से पूछा कि वह चित्र किसका है ? दुकानदार ने कहा कि वह यह तो नहीं जानता कि वह चित्र किसका है। "लेकिन", उसने कहा "जनाब गौर से देखिए, क्या आप को इसमें अपनी माँ नहीं दिखतीं ?" इस तरह देश-विदेश के अनेक नरनारी, आज भी माँ सारदा के चित्र में अपनी माता को देखकर शांति और सात्वना पा रहे हैं।

ईश्वर का मातृत्व :

माँ के इस सार्वभौमिक मातृत्व का उनके व्यक्तित्व को आकर्षण एवं माधुर्य प्रदान करने के अतिरिक्त एक गूढ़ रहस्य, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अर्थ है। इस सन्दर्भ में हमें यह याद रखना होगा कि माँ सारदा श्री रामकृष्ण के लीला संवरण के बाद ३४ वर्ष और जीवित रही थीं। इस विषय में एक भक्त ने माँ सारदा से प्रश्न किया था कि पूर्व के अन्यान्य अवतारों के अवसर पर अवतार की शक्ति (जैसे रामावतार में सीता, कृष्णावतार में राधा) का लीला संवरण अवतार के पूर्व ही हो गया था। लेकिन श्रीरामकृष्णावतार में देखते हैं कि उन्होंने माँ सारदा को पीछे छोड़कर पहले ही अपनी नरलीला समाप्त कर दी है। इसका क्या कारण है ? इसके उत्तर में माँ ने कहा था : "जानते तो हो बेटा, ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) का सभी के ऊपर मातृभाव था, उसी की प्रतिष्ठा के लिए वे मुझे छोड़ गये हैं।" अब अगर श्रीरामकृष्ण को अवतार स्वीकार कर लिया जाय तो उपर्युक्त कथन का अर्थ होगा ईश्वर के मातृत्व की प्रतिष्ठा। अगर ईश्वर माता के रूप में अवतरित होते, तो उसकी अभिव्यक्ति कैसी होती, यह दिखाने और उस भाव को जगत में प्रतिष्ठित करने के लिए श्रीरामकृष्ण माँ सारदा को छोड़ गये थे। श्रीरामकृष्ण की जीवनी से परिचित पाठक जानते हैं कि रामलला को लेकर साधना करते समय श्रीरामकृष्ण का बालक राम के प्रति माता कौशल्या की तरह का वात्सल्य भाव था। परवर्ती काल में गुरुपद पर आरूढ़ होने पर भी यह भाव उनमें पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था जिसके फलस्वरूप राखाल, तारक आदि बालक-भक्त उन्हें अपनी माता के रूप में देखते थे। राखाल तो उनकी गोद में सोते तथा स्तनपान तक करते थे। फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि उनका यह भाव उतना अधिक अभिव्यक्त नहीं हो सका था, जितना वे चाहते थे। वे सर्वदा प्रमुखतः जगन्माता के दिव्य आनन्दमय बालक ही बने रहे थे। लेकिन श्रीरामकृष्ण एवं माँ सारदा के जीवन की विभिन्न घटनाओं का सिंहावलोकन एवं पुनर्मूल्यांकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मातृत्व की प्रतिष्ठा एक ऐसा महान् उद्देश्य था जो श्रीरामकृष्ण की जीवदशा में पूर्ण नहीं हुआ तथा जिसकी पूर्त्ति के लिए माँ सारदा को दीर्घ चौंतीस वर्ष तक प्रयत्न करना पड़ा था। षोडषी पूजा के समय माँ सारदा में जगन्माता का आह्वान एवं जागरण, माँ के जीवन में मातृत्व के विकास को देखकर प्रसन्नता व्यक्त करना, मृत्यु शैय्या पर माँ को जगत् के तापित-पीड़ित लोगों का भार अर्पण कर यह कहना "इसने (अर्थात् स्वयं श्रीरामकृष्ण ने) क्या किया है, तुम्हें इससे कहीं अधिक करना होगा" एवं परवर्ती काल में माँ की स्वीकारोक्ति कि सचमुच बहुत काम बाकी था, ये सारी बातें इसी बात की ओर इंगित करती हैं।

ईश्वर विषयक धारणा का विकास :

ईश्वर के मातृत्व के तात्पर्य को हृदयंगम करने के लिए हमें ईश्वर विषयक विभिन्न धारणाओं के विकास-क्रम का अवलोकन करना होगा। मानव सदा अपनी मान्यताओं के अनुरूप ही ईश्वर की कल्पना करता है।

स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि अगर भैंस ईश्वर की कल्पना करे, तो एक विशालकाय भैंस के रूप में ही करेगी। जंगलों और गुफाओं में रहने वाले असभ्य अर्धनग्न आदिमानव ने सर्वप्रथम अपनी ही तरह के क्रूर हिंस्र किन्तु कहीं अधिक बलशाली ईश्वर की कल्पना की होगी। हमारे पूर्वज इस वानर-सम मानव को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ता था। धन-बल कौशल से अपनी रक्षा एवं स्वार्थ सिद्धि ही उसका एकमात्र लक्ष्य एवं "जिसकी लाठी उसकी भैंस" एक मात्र नियम था। उसकी कल्पना का ईश्वर भी इसी प्रकार का, क्रूर, क्रोधी और दंड विधान करने वाला बलवान ईश्वर था। धीरे धीरे, इस मानव के मन में अपनी जाति या कौम के प्रति प्रेम जागृत हुआ और तब वह एक ऐसे ईश्वर की कल्पना करने लगा जो एक कौम विशेष पर कृपालु लेकिन दूसरी कौमों का शत्रु था।

चिन्तन के सामर्थ्य एवं विचारशीलता का विकास होने पर मानव स्वयं की मान्यताओं में संशोधन करने लगा। उसने प्रश्न किया : ऐसा क्यों होता है कि एक व्यक्ति बलवान और दूसरा दुर्बल होता है? एक जन्म से ही अपंग और दूसरा सर्वगुण सम्पन्न? ऐसा क्यों? सदा बलवान या चतुर व्यक्ति ही सुख प्राप्त करे और दुर्बल अथवा मंदबुद्धि क्यों कष्ट भोगे? इस तरह के प्रश्नों का उत्तर खोजने पर मानव एक अन्य सिद्धांत पर उपनीत हुआ जिसे कार्य-कारण-वाद कहते हैं, तथा जो मानव-जीवन के संदर्भ में कर्मवाद कहलाता है। इसके अनुसार प्रत्येक कार्य का एक कारण होता है और हमारे प्रत्येक अच्छे बुरे कर्म का शुभाशुभ फल अवश्य होगा। हम पूर्व कर्मों के कारण ही सुख अथवा दुःख भोग रहे हैं तथा अगर हम बुरा काम करेंगे तो हमें इसके फलस्वरूप अथवा परजन्म में अवश्य दुःख भोगना होगा और इस सिद्धांत के अनुरूप ईश्वर एक न्याय-कर्ता कर्मफल दाता ईश्वर है। वेदांत दर्शन भी ऐसे ईश्वर को स्वीकार करता है।

इससे उच्चतर धारणा में ईश्वर को अपना पिता माना गया है जो दंड तो देता है, लेकिन सदा सन्तान का कल्याण चाहता है। दंड देने में क्रूरता, अथवा न्यायाधीश की तटस्थता से अधिक उसमें प्रेम एवं कल्याण कामना है। लेकिन मानवमन इतने से ही सन्तुष्ट नहीं होता। कार्य कारण के अभेद्य नियम से मुक्त होने के लिए वह एक ऐसे ईश्वर की कल्पना करता है जो अपनी अहेतुक कृपा के द्वारा उसके कर्म-बन्धनों को काटकर उसे मुक्त कर सके। जिस प्रकार माता सन्तान के गुण दोषों की उपेक्षा कर उसे आश्रय प्रदान करती है उसी प्रकार मानव एक मातृ-ईश्वर की कामना करता है जो उसके पापों की उपेक्षाकर कृपा पूर्वक उनका मार्जन कर उसे मुक्त कर दे।

उपर्युक्त विश्लेषण से हम कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धांतों को प्राप्त करते हैं। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" पशुओं एवं पशुतुल्य आदि-मानव को परिचालित करने वाला नियम है, एवं एक क्रूर, हिंस्र बलवान ईश्वर इसका परिचय है।" "जैसे को तैसा" का नियम चिन्तनशील मानव का परिचालन करता है एवं इस धारणा से संबंधित ईश्वर, एक कर्मफल दाता या न्याय कर्ता ईश्वर है। अहेतुक कृपा दैवी नहीं नियम है, जो माता-रूप ईश्वर में अभिव्यक्त होता है। द्वैतपरक चिन्तन में जगज्जननी या मातारूप ईश्वर की धारणा सर्वोच्च है। पुराणों में हम ईश्वर की उच्च धारणाओं के समरूप अवतारों का वर्णन पाते हैं।' स्वार्थ सिद्धि एवं बल प्रयोग में विश्वास रखने वाले दानव हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकश्यप का बध करने के लिए भगवान, बराह एवं नृसिंह अवतार लेकर बलपूर्वक ही उनका बध करते हैं। राम व कृष्णावतार में वे इतने क्रूर नहीं, लेकिन दुष्टदमन के प्रतीक चक्र एवं धनुष का वे त्याग भी नहीं करते। गोब्राह्मण हित के साथ ही अत्याचारी का नाश भी करते हैं। यहाँ प्रेम, कृपा एवं करुणा का अंश अधिक है। बुद्धावतार में आयुधों एवं हिंसा का पूर्ण अभाव है लेकिन बुद्ध भी यज्ञादि की निन्दा करने से नहीं

चूकते। रामकृष्ण अवतार में तो किसी की निन्दा तक नहीं है। सभी मतों यहाँ तक कि वामाचार एवं कर्तामजा जैसे दूषित साधन प्रणालियों का भी तिरस्कार नहीं किया गया है। इस नये अवतार ने विनम्रता एवं प्रेम रूपी अस्त्र से लोगों को जीता है, और इसका कारण है, ईश्वर के मातृत्व का प्रदर्शन एवं स्थापना जिसकोमुख्यत: माँ सारदा ने सम्पन्न किया। पुराणों में माँ दुर्गा, दक्षिण-काली आदि मातृमूर्त्तियों का वर्णन तो है लेकिन भगवान कभी नारी मूर्त्ति में अवतरित हुए हों ऐसा नहीं पाया जाता। यह आपूर्त्ति माँ सारदा द्वारा पूर्ण हुई है।

मातृत्व का व्यावहारिक पक्ष :

माँ सारदा द्वारा प्रदर्शित ईश्वर के मातृत्व के सिद्धांत के कुछ महत्वपूर्ण व्यावहारिक परिणाम हैं। उपर्युक्त वर्णित मानव के क्रमविकास में माँ सारदा मानो मानव के विकास की अगली उच्चतर अवस्था का प्रतिनिधित्व करती हैं। अगर मानव-मन के विकास में कृपा को विचारशीलता से उच्चतर क्षमता एवं गुण माना जाय तो यह स्वीकार करना होगा कि माँ सारदा ने इसे पूर्णतम मात्रा में विकसित एवं प्रदर्शित किया है। किसी वस्तु को बलपूर्वक छीनना पशु का लक्षण है। देने के बदले पाने की अपेक्षा रखना चिन्तनशील मानव का लक्षण है। लेकिन केवल देवता ही बिना प्रतिदान के, बिना हेतु के दे सकता है। यही कृपा कहलाती है। अगर मानव को देव बनना है, यदि उसे कार्य-कारण की शृंखला से, कर्म के घोर बन्धन से मुक्त होना है तो, तो कृपामय ईश्वर से प्रार्थना एवं उनकी कृपा पर निर्भर होने के बदले स्वयं अपने में कृपारूपी सद्गुण का विकास कर वह मुक्त हो सकता है। स्वयं अहेतुक कृपारूप बनकर, वह स्वयं मनुष्यत्व से उठकर देवत्व को प्राप्त कर सकता है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं :

"जगत में सदा दाता का स्थान लो। प्रेम दो, सहायता दो, सेवा दो, जो कुछ थोड़ा बहुत तुमसे बन सके, दो, लेकिन सौदेबाजी से दूर रहो। कोई शर्त न रखो और तुमपर भी शर्तें नहीं लगायी जायेंगी। जिस प्रकार भगवान अपनी पूर्णता से हमें देता है, उसी प्रकार हम भी दूसरों को दें।"

इसका सर्वश्रेष्ठ दृष्टान्त हमें माँ सारदा के जीवन में ही मिलता है। उनका हाथ कभी देने से नहीं रुका, क्योंकि उन्होंने किसी को कभी पराया नहीं समझा। यही उनका अन्तिम उपदेश भी है : "कोई पराया नहीं है। सभी को अपना बनाना सीखो।"

सामान्यत: जीवन में हमारा अनुभव माँ सारदा के उपर्युक्त कथन के विपरीत ही होता है। अवसर एवं आवश्यकता पड़ने पर अपने भी पराये हो जाते हैं, मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। जिनपर हम सबसे अधिक विश्वास करते हैं, वे धोखा देते हैं। यह बात सत्य होते हुए भी इसे देखने का एक दूसरा दृष्टिकोण भी है। अपनो की सहायता और सेवा करने के लिए हम सदा तत्पर रहते हैं। अत: किसी को अपना समझने का अर्थ उससे सहायता की अपेक्षा करना मात्र नहीं है, बल्कि उसे सहायता देने के लिए तैयार रहना भी है। इसी तरह हम संसार को अपना बना सकते हैं। माँ सारदा का समग्र जीवन इसका एक ज्वलन्त दृष्टान्त है। एक छोटा सा दृष्टान्त यहाँ पर्याप्त होगा। दक्षिणेश्वर रहते समय माँ दो प्रकार के पान के बीड़े तैयार करती थीं। पहले सादे, और दूसरे मसाले वाले। एक भक्त महिला के पूछने पर कि ये किनके लिए हैं? माँ ने कहा कि सादे तो श्रीरामकृष्ण के लिए हैं, और मसालेदार भक्तों के लिए हैं। कारण भक्तों को तो आदर, स्नेह तथा सेवा के द्वारा उन्हें अपना बनाना है, जबकि श्रीरामकृष्ण तो अपने हैं ही।

समाज व्यवस्था के सन्दर्भ में माँ सारदा का मातृत्व प्रेम, सहिष्णुता, सेवा एवं सौहार्द्र पर आधारित एक नयी समाज व्यवस्था का संकेत करता है। मानव की विभिन्न धारणाओं पर आधारित विभिन्न सामाजिक एवं

राजनैतिक व्यवस्थाएँ होती हैं। कुछ लोग मानव को पशु-प्रवृत्तियों एवं वासनाओं द्वारा परिचालित पशु ही समझते हैं जिसे बलपूर्वक नियन्त्रण में रखना चाहिए। वैयक्तिक अथवा सामूहिक तानाशाही इस मान्यता के अनुरूप शासन व्यवस्था है। मौलिक अधिकारों एवं कर्त्तव्यों पर आधारित एवं न्याय द्वारा नियंत्रित गणतन्त्र में मानव को एक समझदार व्यक्ति समझा जाता है, जिसे उसके कर्म के बदले न्यायसंगत प्रतिदान प्राप्त होना चाहिए। ऐसी शासन व्यवस्था में राष्ट्रपति को कृपा के द्वारा छूट प्रदान करने का अधिकार प्राप्त होता है। यह मानो उच्चतर व्यवस्था का संकेत है। पुरातन भारतीय समाज व्यवस्था स्व-धर्म पालन पर आधारित थी। प्रत्येक व्यक्ति अधिकारों एवं प्रतिदान की ओर दृष्टि रखे बिना अपने कर्त्तव्य कर्म करता था। लेकिन कर्त्तव्य सदा कठोर होते हैं। प्रेम के द्वारा ही उनमें माधुर्य की सृष्टि की जा सकती है। अपने निर्दिष्ट कर्मों को प्रेम के द्वारा मधुर बना कर किस प्रकार उच्चतर समाज की रचना की जा सकती है यह माँ सारदा ने अपने जीवन में प्रदर्शित किया है। अपने जीवन काल में दक्षिणेश्वर, जयरामबाटी, उद्बोधन में विभिन्न प्रकृति के लोग माँ सारदा के प्रेम से आकृष्ट हो एक साथ रहते थे। ये समूह मानो भावी समाज व्यवस्था के दृटान्त स्वरूप थे। संसार के विभिन्न देशों एवं जातियों के नर नारियों से युक्त विश्वव्यापी रामकृष्ण संघ, का आधार एवं आपसी बन्धन का सूत्र भी माँ का प्रेम ही है, तथा यह मानो भविष्य की एक वृहद् विश्व-व्यवस्था का सूत्रपात है।

●

धारावाहिक

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

ठाकुर के आदेशानुसार लाटू उस बार आँटपुर गया था। आँटपुर में वह दस-बारह दिन रहा। उस काल की बातें हमने जैसी बाबूराम महाराज के मुख से सुनी हैं, लिखते हैं—"जानते हो! लाटू जब हमारे यहाँ पहली बार गया था तो प्रतिदिन कहता—'मुझे यहाँ अच्छा नहीं लगता' माँ ने पहले तो सोचा कि शायद उसे कोई असुविधा हो रही होगी। इसीलिए वे प्रतिदिन मुझसे कहा करतीं, 'अरे! पूछ न कि उसे क्या असुविधा हो रही है?' मैं तो समझ गया था कि लाटू को क्यों यहाँ अच्छा नहीं लग रहा है। वहाँ ठाकुर नहीं थे न, इसीलिए। लाटू जैसा सेवक ठाकुर को छोड़कर भला कैसे रह सकता था? एक दिन तो वह वहाँ रो ही पड़ा और कहने लगा, 'मैं कल ही दक्षिणेश्वर चला जाऊँगा।' लाटू का रोना देखकर माँ उसके कलकत्ता लौटने में बाधक नहीं हुई।"

लाटू के दक्षिणेश्वर आने पर ठाकुर ने उससे पूछा—'क्यों रे! इतनी जल्दी क्यों लौट आया?'

लाटू ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'वहाँ मन लगा नहीं।'

ठाकुर—'क्यो रे! वह तो बड़ी अच्छी जगह है, फिर बाबूराम की माँ भी बड़ी भक्तिमती है—साधु संन्यासियों की सेवा उसे बड़ी पसन्द है! ऐसी जगह में भी तुझे अच्छा नहीं लगा?'

लाटू—'पता नहीं क्यों? वहाँ आपके लिए मन बड़ा दुखी हो गया था। कैसे भी नामजप में मन को स्थिर नहीं कर सका। सब कुछ मानो शून्य सा लगता था।'

ठाकुर मानो विस्मित होकर कहने लगे—'ऐसी बात तो कभी सुनने में नहीं आयी। वहाँ मन स्थिर नहीं होता, यहाँ मन स्थिर होता है। यह सब कैसी बात है रे? भगवान क्या यहाँ पर हैं और वहाँ पर नहीं हैं? भगवान का नाम लेते रहना, उसमें यहाँ और वहाँ है सा? जहाँ बैठेगा, वहीं मन तल्लीन हो जाएगा—तभी तो समझ में आएगा कि जप-ध्यान में ठीक-ठीक पकड़ आयी है।'

लाटू ने संकुचित होकर कहा—'वहाँ पर आप नहीं थे।'

ठाकुर—'मेरे न रहने पर तेरा मन स्थिर नहीं होगा—यह सब क्या कहता है तू? क्यों, क्या मैं तेरे साथ चिरकाल तक रहूँगा?'

लाटू रुँआसा होकर कहने लगा—'आपके अभाव में मेरा जीवन बिल्कुल नष्ट हो जाएगा। आप मुझे ऐसा कुछ कर दीजिए कि मैं चिरकाल तक आपके साथ रह सकूँ।'

ठाकुर हँसते हँसते कहने लगे—'साले का हठ भी कितना है!'

लाटू रो पड़ा। लाटू को रोते देखकर स्नेहपूर्वक कहने लगे—'अरे! अभी से इतना उतावला होने से कैसे चलेगा!' ये बातें हमने रामलाल दादा से सुनी हैं।

ठाकुर ने लाटू को आँटपुर क्यों भेजा था यह तो वे ही जाने। हमें तो लगता है कि ठाकुर अपने सेवक को इस भाँति परीक्षा कर उन्हें एक बात समझना चाहते थे। आप लोग यहाँ सोच सकते हैं कि ठाकुर लाटू को जो बताना चाहते थे वह वे मुख से कहकर भी तो बता सकते थे। अपने से दूर रखकर यह बात क्यों समझायी? इस सम्बन्ध में लाटू महाराज ने एक बड़ी युक्ति बतायी थी—'गुरु शिष्य पर ऐसे ही कृपा नहीं करते। चारों धाम घुमाने के बाद ही चेले पर कृपा करते हैं। जानते हो क्यों? चारों धाम भटककर आ जाने पर ही गुरु की महिमा समझ में आती है। गुरु शिष्य को कैसे और कितना स्नेह करते हैं ये सब बातें सद्गुरु के पास रहने से उतनी समझ में नहीं आती। गुरु से दूर चले जाने पर ही समझ में आता है कि वे कैसे प्रेम के द्वारा शिष्य को बाँध रखते हैं। तब समझ में आता है कि गुरु कृपा में कितनी शक्ति है! गुरु के कृपा करने पर जगत में जो नहीं होने वाला है, वह सम्भव हो जाता है। विविध तीर्थों में घूमते-घूमते जब शिष्यों के मन में 'सर्वतीर्थमयो गुरुः' इस तत्त्व का ज्ञान हो जाता है तब चेले गुरु के बारे में निःसन्दिग्ध हो जाते हैं। उसके पहले गुरु के प्रति सन्देह नहीं जाता, गुरु तो इतने आत्मीय हैं, यह समझ में नहीं आता। गुरु के बारे में सन्देह रहित होने पर ही उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति पक्की होती है।'

बहुत से लोगों को लगता है कि गुरु शिष्य की परीक्षा किये बगैर ही उसे साधानाबीज प्रदान किया करते हैं। परन्तु ऐसी बात नहीं, वे लोग विविध प्रकार से परीक्षा करने के बाद ही शिष्य पर कृपा करते हैं। फिर साधनाबीज देने के बाद भी गुरु शिष्य की निष्ठा और तपस्या पर नजर रखते हैं। जो शिष्य गुरुवाक्य पर श्रद्धा रखकर उसमें पूरे जी-जान से जुट जाते हैं, उन्हीं को गुरु साधना के उच्च अंगों का पता बताकर कृपा करते हैं। और जो शिष्य साधनाबीज पाकर भी उसे अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित करने का प्रयास नहीं करते उसे गुरु उच्चतर साधनतत्त्व का उपदेश नहीं देते। साधक की साधनप्रवृत्ति पर ही गुरुकृपा निर्भर है। 'शिष्य यदि साधनापथ पर एक चौथाई रास्ता तय कर लेता है तो गुरु कृपा करके उसे और भी एक चौथाई रास्ते की खबर दे देते हैं' इसी भाव की एक बात लाटू महाराज बताया करते थे। वे और भी कहते थे कि गुरु पथ की जानकारी देकर ही चुप रहते हैं और शिष्य को स्वयं ही अपनी साधना के द्वारा अपने पथ की बाधाओं को पार करना पड़ता है। जो शिष्य स्वयं परिश्रम न करके गुरु का मुखापेक्षी होकर पड़ा रहता है, उसे काफी दिनों तक प्रतीक्षा करनी पडती है। क्योंकि कोई भी सद्गुरु शिष्य की प्रमादयुक्त गुरुमुखापेक्षिता का समर्थन नहीं करते, यहाँ तक कि उसे प्रश्रय भी नहीं देते। सद्गुरु चाहते हैं कि शिष्य कर्मठ हो, अपनी साधना के बल पर प्रगति करे और अपनी तपस्या के लक्ष्य तक पहुँच जाय। परन्तु सत् शिष्यगण गुरु को पकड़कर ही साधना में अग्रसर होना चाहते हैं और उन्हीं को इष्ट बनाकर लक्ष्य तक पहुँचना चाहते हैं इसीलिए साधना-काल में सत्शिष्य और सद्गुरु के बीच प्रेम का एक खेल ही चलता रहता है। उसमें शिष्य गुरु को धरना चाहता है परन्तु गुरु इष्ट को धराना चाहते हैं। दोनों के बीच चलने वाले इस प्रेम के लुकाछिपी के खेल में शिष्य गुरु-मय हो उठता है और गुरु इष्टमय हो जाते हैं—तब वे इष्ट ही शिष्य की प्रकृति के अनुसार रूप धारण कर उसके समक्ष प्रकट होते हैं। उस समय शिष्य बाहर-भीतर गुरु के ध्यान में तल्लीन रहता है। गुरु का थोड़ा भी अलगाव या बिछोह सहन नहीं कर सकता। परन्तु गुरु उस समय उसे दूर-दूर ही रखते हैं। ऐसा समय शिष्य के लिए बड़ा ही मर्मभेदक होता है।

जिस समय तपस्वी-लाटू की अवस्था ऐसी गुरुनिर्भरशील थी उसी समय ठाकुर ने उन्हें आँटपुर भेज दिया। आँटपुर में जाकर लाटू को अपने मन की हालत समझ में

आ गयी थी। तपस्वी लाटू तब गुरुगत प्राण थे, गुरु का विरह सहन करने के लायक मानसिक दृढ़ता तब भी उनमें विकसित नहीं हुई थी। इसीलिए ठाकुर को छोड़ कर रहने में लाटू को बड़ा कष्ट हुआ था। तथापि ठाकुर उनको वह शिक्षा देना चाहते थे। वे महागुरु थे न, इसीलिए वे चाहते थे कि उनका सेवक भगवान की प्राप्ति करे, भगवान की महिमा देखे, माने और उसी का आधार लेकर अपनी साधना में अग्रसर हो। परन्तु ठाकुर का यह शुभ आशीर्वाद तब लाटू की समझ में नहीं आया था।

आँटपुर से दक्षिणेश्वर लौटने के बाद जब सेवक लाटू ने देखा कि ठाकुर अब उन्हें सेवा का कोई भी कार्य करने को नहीं कहते, तब उस मर्मान्तिक दुःख से दुःखी होकर वह अकेले में रोया था। एक भक्त के साथ वार्तालाप के समय यह बात उनके मुख से निकल पड़ी थी।

'बाबूराम के गाँव से लौटने के बाद से मुझे लगता कि ठाकुर मेरे को दूर-दूर रख रहे हैं। तब वे मुझे कोई भी कार्य करने को नहीं कहते थे। यहाँ तक कि मुझे कोई उपदेश भी नहीं देते थे। मेरा जो कुछ कार्य था उसे वे योगीन, बाबूराम आदि से करा लेते थे। तब वे ऐसा छोड़ो-छोड़ो का भाव दिखाते थे। मैं और भला क्या करता—केवल मन ही मन उन्हें पुकारता, कहता कि मुझे दूर मत रखिए, और निकट खींच लीजिए। इसी प्रकार कितने ही दिन बीते। अन्त में जब रहा न गया तो एक दिन जाकर मैंने माँ से अपने दुःख की बात कही। माँ ने मुझे आश्वस्त किया, माँ की दया क्या कभी भूल सकता हूँ? उन्होंने ही तो मुझे उनकी कृपा मिला दी।' आगामी अध्याय में उस कृपा का प्रसंग वर्णित होगा।

दक्षिणेश्वर लौटने के बाद से तपस्वी-लाटू प्रतिदिन प्रातःकाल ठाकुर का मुखदर्शन करने के बाद ही कमरे से बाहर निकलता था। प्रतिदिन सवेरे ठाकुर का स्मरण-मनन और उन्हें प्रणाम किये बिना लाटू अपने दैनन्दिन कार्य आरम्भ नहीं करता था। एक दिन सवेरे ठाकुर को कमरे में न पाकर लाटू उस कमरे से ही चिल्लाकर ठाकुर को बुलाने लगे—'आप कहाँ हैं?' लाटू का कण्ठस्वर सुनकर ठाकुर बोले, 'आता हूँ रे, आता हूँ।' जब तक ठाकुर कमरे में आ नहीं गये तब तक लाटू ने अपनी आँखों पर हाथ रखकर उन्हें ढँके रखा। ठाकुर के कमरे में आ जाने पर उसने हाथ हटाया और उन्हें सामने देखकर प्रणाम किया।

ऐसी ही एक अन्य घटना की बात भी हमने सुनी है। उस दिन भी ठाकुर को न देख पाकर लाटू पुकार रहा था। ठाकुर ने उसे बाहर आने को कहा। पश्चिम के बरामदे में आकर लाटू ने उन्हें पुष्पोद्यान में देखा और पूछा—'वहाँ पर क्या ढूंढ़ रहे हैं आप?'

ठाकुर—अरे! कल जो जूतों का जोड़ा.......ने ला दिया था, उसका एक ही रह गया है, दूसरा लगता है सियार उठा ले गया है। देख रहा हूँ—कहीं इधर तो नहीं लाया है!

ठाकुर को जूता खोजते देखकर लाटू सिहर उठा और बोला—'लौट आइए महाराज! अब आपको तलाशना नहीं होगा।'

ठाकुर (वहीं से)—हाँ रे! नये जुतों का जोड़ा तेरे काम नहीं आया। कल ही तो ला कर दिया था और अभी तूने एक बार ही पाँव में डाला था। (क्रमशः)

समाचार एवं सूचनाएँ

श्रीरामकृष्ण-अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा का

शिलान्यास

छपरा, १३ नवम्बर, स्थानीय श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम की नव अर्जित भूमि पर आयोजित धर्म सभा में १० से १२ नवम्बर तक रामकृष्ण विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के मनीषी सचिव श्रीमत् स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ने कुल पाँच प्रवचन दिये। १० नवम्बर की संध्या को श्रीरामकृष्ण के जीवन एवं उनके जीवनदायी संदेशों पर उन्होंने बड़ा ही सारगर्भ भाषण दिया। सभा का उद्घाटन किया नगर पालिका के अध्यक्ष श्री महेन्द्र प्रसाद, एडवोकेट ने और अध्यक्षता की श्री इन्द्रमोहन सिंह, अधिवक्ता, एम. एल सी. ने।

११ नवम्बर को प्रात: काल श्रीमत् स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ने आश्रम के प्राचीर का शिलान्यास, ठाकुर, माँ, स्वामीजी और स्वामी अद्भुतानन्द जी की विधिवत् पूजा के बाद किया। इस अवसर पर आयोजित सभा का उद्घाटन किया श्री आभास कुमार चटर्जी, आइ. ए. एस. सचिव, राजस्व पर्षद् बिहार सरकार ने और अध्यक्षता की पटना रामकृष्ण मिशन आश्रम के सचिव श्रीमत् स्वामी चन्द्रानन्द जी महाराज ने। श्री चटर्जी ने बताया कि समाज में स्वामी विवेकानन्द के सेवा के आदर्श को अपनाकर ही हमारा देश पुनर्गठित हो सकता है। उनका व्याख्यान बड़ा ही प्रेरक और प्रशंसित रहा। स्वामी चन्द्रानन्द जी महाराज ने कहा कि मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि यहाँ ठाकुर, माँ, स्वामीजी विराज रहे हैं।

११ नवम्बर की संध्या की सभा की अध्यक्षता की श्री आभास कुमार चटर्जी ने। स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ने लाटू महाराज और माँ सारदा के जीवन एवं उनके सन्देश का विस्तार से उल्लेख किया।

१२ नवम्बर की प्रात: कालीन सभा का विषय था धर्म और विज्ञान। अध्यक्षता की श्री कपिलदेव प्रसाद श्रीवास्तव ने। स्वामी आत्मानन्द जी ने इस गूढ़ विषय पर बड़ी गहराई से प्रकाश डालते हुए कहा कि एक स्तर पर आकर धर्म और विज्ञान मिल जाते हैं तथा जहाँ विज्ञान पराजित होता है वहाँ धर्म अपना कार्य शुरू कर देता है। इस संदर्भ में उन्होंने अनेक वैज्ञानिकों के नाम और विचारों को भी उद्धृत किया। सांध्यकालीन सभा में स्वामी विवेकानन्द के जीवन और आदर्श पर स्वामी आत्मानन्द जी ने विस्तार से विचार करते हुए बताया कि स्वामीजी द्वारा निर्देशित शिवभाव से जीव की सेवा कर तथा त्याग की वृत्ति को अपनाकर ही हमारा देश प्रगति के पथ पर बढ़ सकता है। सभा की अध्यक्षता की राजेन्द्र कॉलेज के हिन्दी विभाग के विश्वविद्यालय आचार्य डॉ० रामानन्द शर्मा ने। आश्रम के सचिव डॉ० केदार नाथ लाभ ने स्वागत भाषण करते हुए आश्रम की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला तथा लोगों से आश्रम के भवन निर्माण के लिए हर तरह की सहायता करने का अनुरोध किया। धन्यवाद ज्ञापन किया क्रमश: डॉ० केदारनाथ लाभ, श्री रामप्रताप सिंह, श्री रामकिशोर प्र० श्रीवास्तव तथा प्रो० श्रीनाथ मेहरोत्रा ने।

युव-सभा

४ दिसम्बर। रामकृष्ण मिशन बेलुड़ मठ के तरुण किन्तु गत्यात्मक साधु श्रीमत् स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी महाराज ने आश्रम की भूमि पर छपरा के नवयुवकों को सम्बोधित करते हुए लोक कल्याण के लिए उन्हें समर्पित भाव से लग जाने का आह्वान किया। उन्होंने हनुमान की भाँति अनासक्त भाव से समाज के उत्थान के लिए स्वामी विवेकानन्द के विचारों के अनुसार कार्य करने की प्रेरणा युवकों को दी।

सभा की अध्यक्षता नेहरु युवा मंच के समायोजक श्रीराम किशोर प्रसाद श्रीवास्तव ने की और धन्यवाद ज्ञापन किया प्रो० सुरेश कुमार मिश्र ने।
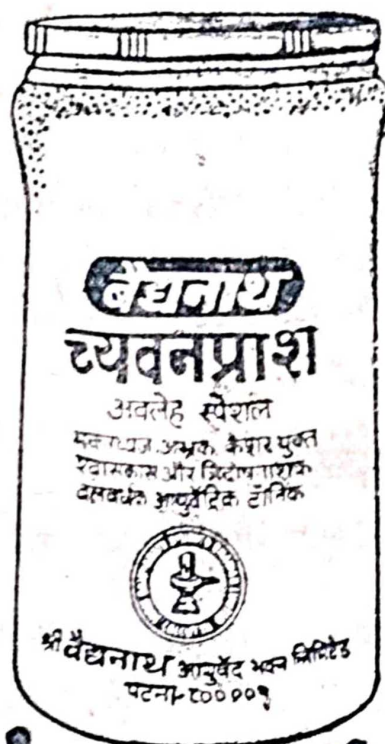
बैद्यनाथ च्यवनप्राश
अब पोलीजार मे
उपलब्ध
स्फूर्ति
कफ खांसी नाशक
यौवन
दिमागी ताजगी
विकास
बलवर्द्धक
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
अवलेह स्पेशल
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक
कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?
प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।
बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१